दश महाविद्या

तन्त्रसार

महाकाली

तारा

योगीराज यशपाल जी
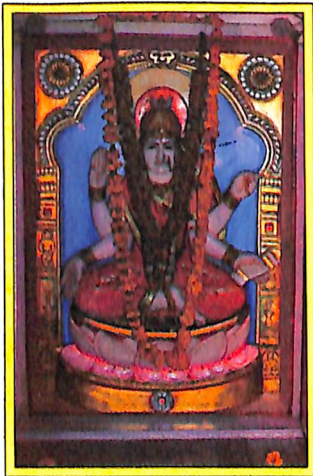
त्रिपुर भैरवी
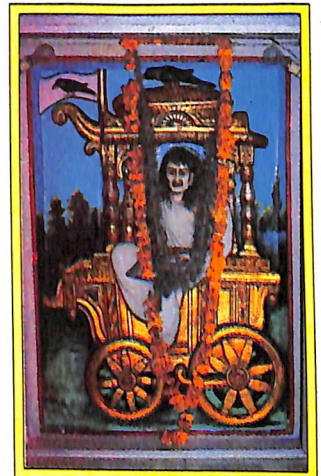
धूमावती

रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार

दश महाविद्या तन्त्रसार ❖ योगीराज यशपाल जी
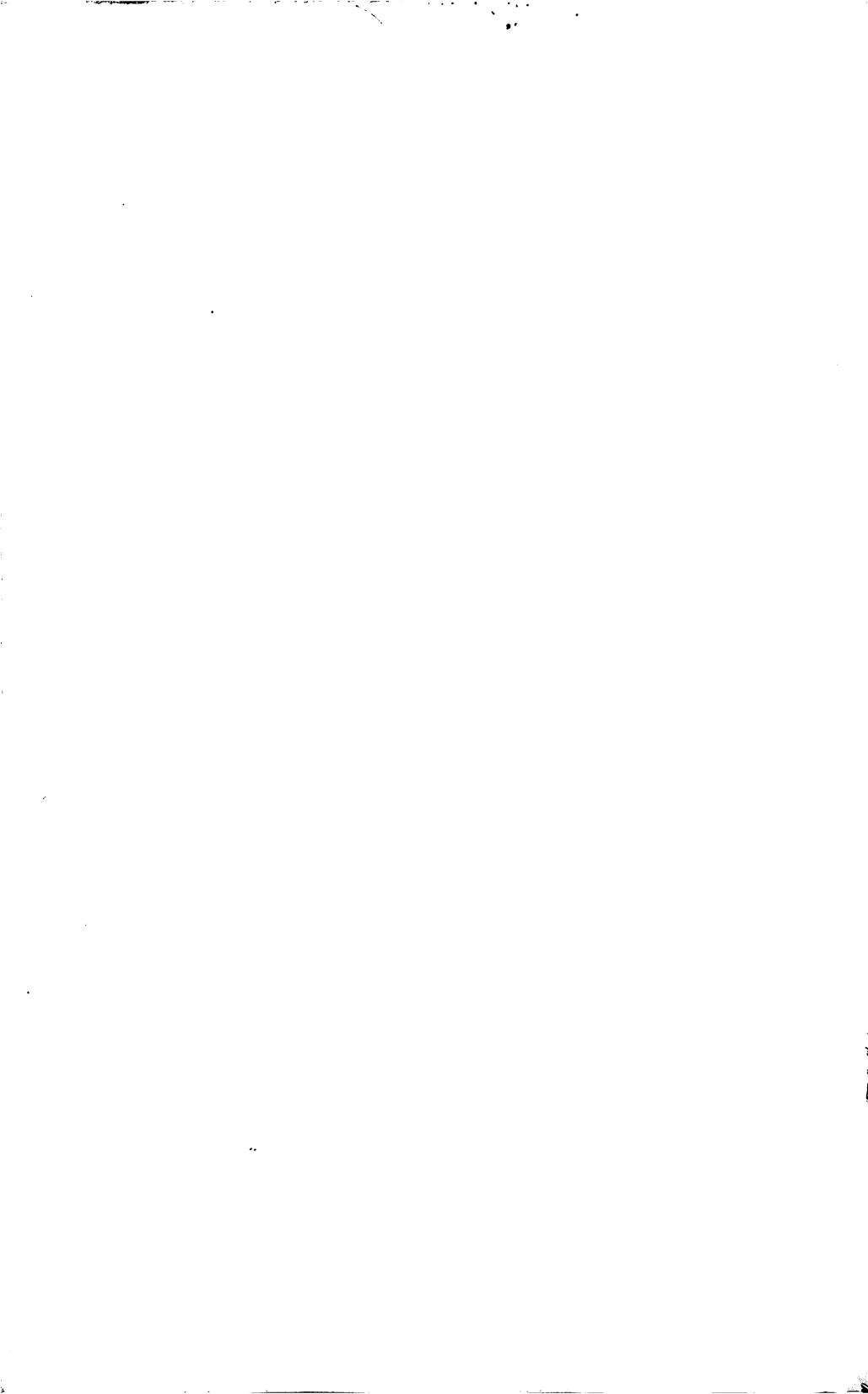
दश महाविद्या तन्त्रसार

भिन्न-भिन्न देवता भिन्न-भिन्न युगों में पृथक-पृथक उपासना पद्धतियों से साधकों को अभीष्ट प्रदान किया करते हैं लेकिन चारों युगों में सदैव ही मूलभूत रूप से सम्पूर्ण संतुष्टि, सामर्थ्य और सिद्धि प्रदान करने की क्षमता केवल दश महाविद्याओं में ही है। इनकी महिमा अनन्त एवं विराट् से भी अधिक है। यही कारण है कि महाविद्याओं के अनुष्ठान शीघ्र ही अपने चमत्कार प्रकट कर दिया करते हैं।

यशपाल 'भारती'

कलियुग में फलदाई

दश महाविद्या

तन्त्र सार

लेखक एवं संग्रहकर्ता :

योगीराज यशपाल 'भारती'

(बैकुण्ठवासी)

मूल्य:120.00

रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार

पाठकों से

दश महाविद्या की उपासना प्रारम्भ करने से पूर्व जो-जो बातें जान लेना जरूरी है उसी के अनुरूप मैं पाठकों के सम्मुख हूँ। 'बगलामुखी महासाधना' नामक पुस्तक पठन-साधन से बहुत से जिज्ञासुओं ने लाभ उठाते हुए मुझे बार-बार प्रेरित किया कि समस्त महाविद्याओं की संयुक्त प्राथमिक उपासना तथा मुख्य जानकारी देनेवाली पुस्तक भी समाज में होना जरूरी है—इसी लक्ष्य को निर्धारित करके यह 'दश महाविद्या तन्त्रसार' आपके हाथों में है।

इस विषय में सबसे पहले आप यह जान लें कि १. काली, २. तारा, ३. षोडषी और ४. भुवनेश्वरी ये चार महाविद्याएँ हैं। इसके बाद ५. भैरवी, ६. छिन्नमस्ता, ७. धूमावती ये तीनों विद्याएँ हैं। फिर ८. बगला, ९. मातंगी, १०. कमला ये तीनों सिद्ध विद्याएँ हैं।

इसके साथ-साथ ही इन सब दश विद्याओं को दो कुलों में बाँटने की भी प्राचीनतम परम्परा है।

१. कालीकुल : काली, तारा, भुवनेश्वरी और छिन्नमस्ता।

२. श्रीकुल : षोडषी, बगला, भैरवी, कमला, धूमावती और मातंगी।

साधकों को चाहिए कि किसी भी एक कुल की साधना में ही अग्रसर हों। दश महाविद्याओं का पूजन करते समय उनके दाईं ओर शिव का पूजन भी करना आवश्यक है उनके नामों का क्रम निम्न प्रकार से है।

१.	काली	=	महाकाल
२.	तारा	=	अक्षोभ्य
३.	षोडषी	=	कामेश्वर
४.	भुवनेश्वरी	=	त्र्यम्बक
५.	भैरवी	=	दक्षिणा मूर्ति
६.	छिन्नमस्ता	=	क्रोध भैरव
७.	धूमावती	=	(यह विधवा रूपिणी हैं)
८.	बगला	=	मृत्युंजय
९.	मातंगी	=	मातंग (सदाशिव)
१०.	कमला	=	विष्णुरूप (नारायण)

दश महाविद्याओं से ही भगवान विष्णु के दस अवतार भी माने गये हैं—

१.	काली	=	श्री कृष्ण
२.	षोडषी	=	श्री परशुराम
३.	भैरवी	=	श्री बलराम
४.	धूमावती	=	श्री वाराह
५.	मातंगी	=	श्री राम
६.	तारा	=	श्री मत्स्य
७.	भुवनेश्वरी	=	श्री वामन
८.	छिन्नमस्ता	=	श्री नृसिंह
९.	बगला	=	श्री कूर्म
१०.	कमला	=	श्री बुद्ध

कल्कि अवतार भगवती श्री दुर्गा जी का माना गया है।

—लेखक

विषय-सूची

दश महाविद्या
तन्त्र सार

दश महाविद्याओं के प्रचलित नाम—

१. काली
२. तारा
३. षोडषी (ललिता)
४. भुवनेश्वरी
५. छिन्नमस्तिका
६. त्रिपुरभैरवी
७. धूमावती
८. बगलामुखी
९. मातंगी
१०. कमला

महाविद्याओं के विभिन्न नामों की तालिका

क्र° सं°	मूल संख्या	महाविद्या	अन्य नाम	विशेषता
१.	०	काली	आद्या, मूल प्रकृति, प्रथमा, मुण्डमालिनी	महाविद्या सिद्धिदात्री
२.	१	तारा	कंकाल मालिनी	सिद्धविद्या
३.	२	षोडषी	श्रीविद्या, त्रिपुरा, ललिता, त्रिपुरसुन्दरी	सिद्धविद्या मोक्षदात्री
४.	३	भुवनेश्वरी	राजराजेश्वरी	सिद्धविद्या भोगदात्री
५.	४	छिन्नमस्तिका	छिन्ना, छिन्नमस्ता	मोक्षविद्या
६.	५	भैरवी	त्रिपुर भैरवी, सिद्धि भैरवी	सिद्धविद्या, मंगलदात्री
७.	६	धूमावती	अलक्ष्मी	स्तम्भनविद्या
८.	७	बगलामुखी	वल्गामुखी, पीताम्बरा।	ब्रह्मास्त्र एवं त्रैलोक्य-स्तम्भनी-विद्या
९.	८	मातंगी	सुमुखी, उच्छिष्ट-चाण्डालिनी।	मोहनी विद्या
१०.	९	कमला	लक्ष्मी, नारायणी।	मोहविद्या, मोक्ष विद्या

उपरोक्त वर्णन के अनुसार ही दश-महाविद्याओं को जाना जाता

है परन्तु कहीं-कहीं पर इनके अन्य नाम भी देखे गये हैं। यहाँ पर प्रस्तुत सूची में क्रम संख्या, ब्रह्म संख्या (मूल-संख्या), महाविद्या के प्रचलित नाम, अन्य नाम (सम्बोधन) तथा विद्या (विशेषता) व्यक्त की गई है।

एक दुर्लभ पाण्डुलिपि 'परातन्त्र' के अनुसार एक ही महाशक्ति अलग-अलग छः सिंहासनों पर आरूढ़ होकर क्रमशः छः आम्नायों की अधिष्ठात्री देवी कहलाती हैं जो निम्नलिखित विवरण के अनुसार है—

- पूर्वाम्नाय की देवी पूर्णेश्वरी
- दक्षिणाम्नाय की देवी विश्वेश्वरी
- उत्तराम्नाय की देवी काली
- पश्चिमाम्नाय की देवी कुब्जिका
- ऊर्ध्वाम्नाय की देवी षोडशी कहलाती है।

दश महाविद्याओं के मन्त्र

दुर्लभ और सुलभ पाण्डुलिपि तथा प्रकाशित पुराण, आगमादि शास्त्रों में अनेकों मन्त्रादि के विविधता से दर्शन होते हैं। यहाँ पर दश महाविद्याओं के प्रमुख एक-एक मन्त्र को प्रस्तुत किया गया है जो कि आपकी उपासना में प्रयोग किये जाने पर सोने में सुहागे के सदृश कार्य करेंगे।

काली मन्त्र

"ॐ क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं दक्षिण-कालिके क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं स्वाहा॥"

तारा मन्त्र

"ऐं ॐ ह्रीं क्रीं हूं फट्॥"

छिन्नमस्तिका मन्त्र

"श्री ह्रीं क्लीं ऐं वज्रवैरोचनीयै हूं हूं फट् स्वाहा॥"

षोडशी मन्त्र

"ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क ए ह ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं महाज्ञानमयी विद्या षोडशी माँ सदाऽवतु॥"

भुवनेश्वरी मन्त्र

"ऐं ह्रीं श्री॥"

त्रिपुर-भैरवी मन्त्र

"हस्त्रौं हस्क्लरीं हस्त्रौंः॥"

धूमावती मन्त्र

"धूँ धूँ धूमावती ठः ठः॥"

बगलामुखी मन्त्र

"ॐ ह्रीं बगलामुखी सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय-स्तम्भय जिह्वां कीलय-कीलय बुद्धिं विनाशय-विनाशय ह्रीं ॐ स्वाहा॥"

मातङ्गी मन्त्र

"ॐ ह्रीं क्लीं हूं मातंग्यै फट् स्वाहा॥"

कमला मन्त्र

"ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः जगत्प्रसूत्यै नमः॥"

कलियुग में महाफलदाई

दश महाविद्यायें

"काली, तारा महाविद्या, षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी, छिन्नमस्तिका च विद्या धूमावती तथा॥
बगला सिद्धविद्या च मातंगी कमलात्मिका।
एता दश-महाविद्याः सिद्ध-विद्याः प्रकीर्तिताः॥"

महाविद्या के विषय पर कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाने की भाँति है क्योंकि अनन्त विराट् को संक्षेप में शब्दावरण पहनाना अत्यधिक कठिन होता है। फिर भी इस लघु पुस्तिका के द्वारा, माँ जगदम्बे की कृपानुसार महाविद्याओं पर लिख रहा हूँ।

हम समस्त मनुष्यों का एकमात्र चरमलक्ष्य आनन्द की उपलब्धि और सुखोपभोग ही है। इसे प्राप्त करना मानव जीवन का नैसर्गिक अधिकार है। यह समूचा जगत आनन्द का उद्‌भव स्थल है और आनन्द ही हमारा उद्‌गम स्थान है। आनन्दातिरेक से ही आत्मा जीवन धारण करता है और अन्ततः शून्य में विलीन हो जाता है।

इस सृष्टि के मार्ग पर अवतीर्ण हो जाने के पश्चात् हम विषयों की तरफ आकर्षित हो जाते हैं। जिसके कारण हमारे चित्त में आनन्द का स्थायित्व नहीं हो पाता। इसका कारण केवल यही होता है कि जिन विषयों के लिए हमारा चित्त द्रवित होता है उनमें स्वयं ही स्थैर्य नहीं है। यही कारण है कि एक विषय में जब चित्त अभाव का अनुभव करता है

तब दूसरी आकांक्षा की तरफ हो जाया करता है। यह क्रम निरन्तर चलता रहता है जिसके कारण आनन्द और सुखानुभूति की उपलब्धि हो ही नहीं पाती है। जीवन और संसार एक मृगतृष्णा सा दृष्टिगोचर होने लगता है। रोते हुए आते हैं और रोते हुए चले जाते हैं क्योंकि हम सांसारिक जीवन के उद्देश्य को पूर्ण नहीं कर पाते। खाली कलश में थोड़ा सा जल, घड़े को बजाया ही करता है और भरे हुए कलश से आवाज नहीं आती बल्कि जल छलका करता है। मानवीय आत्मा स्वयं को अज्ञान और अहंकार से, तत्पश्चात् इच्छाओं और वासनाओं से मुक्त करे और फिर निरतिशय आनन्द, अविचल शान्ति और कल्मषहीन पवित्र जीवन की प्राप्ति के हेतु श्रीगणेश करें। यह कार्य अत्यधिक कठिन है कि मानव विषयों से उच्चाटित हो जाये। ऐसी स्थिति में जीवन सारहीन प्रतीत होने लगता है। हम सभी भोग चाहते हैं और इसके साथ ही मोक्ष की भी अभिलाषा रखते हैं।

अनेक कर्म करते हुए जब हमें कर्मानुसार भोग की उपलब्धि नहीं होती तब हृदय व्यथित हो उठता है कि जब भोग नहीं हो पा रहा तो मोक्ष की कल्पना ही व्यर्थ है। यही लक्ष्य एक भटकन का रूप बनकर हमें एक से दूसरी उपासनाओं की तरफ आकर्षित करने लगता है। परन्तु अन्तहीन लक्ष्य की अन्तहीन उपलब्धि नहीं हो सकती, क्योंकि हम जहाँ जाते हैं, वह स्वयं ही जाग्रत या सिद्ध नहीं हुआ करते। यह विशेषता केवल दश महाउपास्य विद्याओं में ही है कि वह सिद्ध तथा जाग्रत हैं। अनेकों उपासकों ने इनकी कृपा प्राप्त करके इनके दर्शन भी किये हैं। यह महाविद्यायें अपने हृदय में इतनी ममता रखती हैं कि साधक की लगन और श्रद्धानुसार स्वयं के प्रभाव शीघ्र व्यक्त कर दिया करती हैं जिस कारण व्यक्ति उत्साहित होकर आनन्द की कामना ही नहीं, भोग भी करने लग जाता है। यही वो महाविद्यायें हैं जो कि जीव को भोग और मोक्ष प्रदान किया करती हैं।

दश का रहस्य

संसार में दश दिशायें स्पष्ट हैं। इसी भाँति से दश की संख्या भी पूर्णतः पूर्ण ब्रह्म का सूचक हैं।

किसी भी रहस्य का शुभारंभ शून्य से होता है, शून्य! अर्थात् आदि अन्त रहित संख्या, जिससे जुड़े उसे महान बना दे और स्वयं एक क्रम प्रवाहित कर दे···ऐसा है शून्य का स्वभाव। इसके बाद एक, दो, तीन से नौ तक की संख्यायें होती हैं। शून्य से ही सृष्टि होती है। जब कुछ नहीं था उस समय शून्य था। इस शून्य का अर्थ शून्य नहीं अपितु पूर्ण है। इसी से नौ संख्याओं का विराट् प्रस्तुत हुआ करता है। जो कि एक से नौ तक होता है। यही रहस्य क, च, ट, प, त, य, क्ष, त्र तथा ज्ञ का है क्योंकि यही आद्य अक्षर हैं। इन्हीं से अन्य शब्दों का प्रादुर्भाव हुआ करता है। प्रत्येक मनुष्य की देह पर नौ द्वार स्पष्ट हैं और दसवाँ द्वार अदृश्य है क्योंकि वह शून्य रूपी विराट् है, जहाँ से समस्त संख्या-रूपी भावनाओं का श्रीगणेश हुआ करता है। शिरोमण्डल प्रदेश में शून्य सर्वदा कार्यरत है।

दश महाविद्याओं का प्रथम दर्शन

देवी पार्वती को आद्यभवानी माना जाता है। इनका पाणिग्रहण संस्कार देवाधिदेव महादेव के साथ इनकी अभिलाषानुसार हुआ था। पार्वती जनक दक्ष ने एक बार यज्ञ किया जिसमें उसने शिवजी को आमन्त्रित नहीं किया। पार्वती को इस यज्ञ की सूचना प्राप्त हुई तो उसने शिवजी से वहाँ चलने का विनम्र निवेदन किया। जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया। अपने स्वामी की अभिलाषा वहाँ न जाने की समझकर पार्वती ने स्वयं के जाने की आज्ञा चाही तो शिव ने दक्ष के शत्रुतापूर्ण व्यवहार का ध्यान रखते हुये उन्हें पुनः मना कर दिया। अपने शब्दों की बारम्बार अवहेलना देखकर पार्वती ने कहा—

"ततोऽहं तत्र यास्यामि, तदाज्ञापय वा न वा।
प्राप्स्यामि यज्ञभागं वा नाशयिष्यामि व मखम्॥"

अर्थात् आपकी आज्ञा हो या न हो किन्तु मैं वहाँ अवश्य जाऊँगी। वहाँ जाकर मैं यज्ञ अंश प्राप्त करूँगी अन्यथा यज्ञ नष्ट कर दूँगी।

शिव के पुनः समझाने पर पार्वती क्रोधित हो उठी और उन्होंने रौद्र रूप ग्रहण कर लिया। उनके नेत्र क्रोध से लाल हो गये, अधर क्रोध से फड़फड़ाने लगे और तीव्र अट्टहास किया।

कुछ स्मरण करके शिवजी ने उन्हें ध्यान से देखा तो पार्वती का शरीर क्रोधाग्नि से जल कर क्रमशः काला पड़ता जा रहा था।

अपनी जीवन-संगिनी का यह भीषण रूप देखकर उन्होंने दूर चले जाना सम्भवतः उचित समझा होगा, अतः वहाँ से चले गये। वह कुछ दूर ही गये थे कि अपने समक्ष एक दिव्य स्वरूप देखकर अचम्भे में पड़ गये। तत्पश्चात् उन्होंने अपने दाँये, बाँये, ऊपर तथा नीचे अर्थात् सभी तरफ देखा तो प्रत्येक दिशा में एक विभिन्न देवीय स्वरूप देखकर स्तम्भित हो गये। सहसा उन्हें पार्वती का स्मरण हुआ और उन्होंने सोचा कि कहीं यह सती का प्रताप न हो। अतः उन्होंने कहा—"पार्वती! क्या माया है?"

अपने स्वामी का प्रश्न श्रवण करके पार्वती ने विनम्र भाव से बताया—"स्वामी! आपके समक्ष जो कृष्ण-वर्णा देवी स्थित है वह काली है। आपके ऊपर महाकाल स्वरूपिणी जो नील-वर्णा देवी हैं वह 'तारा' है। आपके पश्चिम में श्याम वर्णा और कटे हुये शीश को उठाये जो देवी खड़ी हैं वह 'छिन्नमस्तिका' हैं। आपके बाँई तरफ देवी 'भुवनेश्वरी' खड़ी हैं। आपके पृष्ठ पर शत्रु मर्दन करने वाली देवी 'बगलामुखी' खड़ी हैं। आपके अग्निकोण में 'विधवा रूपिणी-धूमावती' खड़ी हैं। नेत्रऋत्य कोण में देवी 'त्रिपुर सुन्दरी' खड़ी हैं। वायव्य कोण पर 'मातंगी' खड़ी हैं। ईशान कोण पर देवी 'षोडशी' खड़ी हैं तथा

'भैरवी' रूपा होकर मैं स्वयं उपस्थित हूँ।"

यहीं पर शिवजी के द्वारा इनका महात्म्य पूछे जाने पर पार्वती ने बताया था—'इन सभी की पूजा अर्चना करने पर चतुर्वर्ग की अर्थात् धर्म, भोग, मोक्ष तथा अर्थ की प्राप्ति हुआ करती है। इन्हीं की कृपा से षट्कर्मों की सिद्धि तथा अभीष्ट की उपलब्धि हुआ करती है।'

शिवजी के निवेदन करने पर यह देवियाँ क्रमशः कालिका देवी में समा गयीं।

कुल परम्परा

दश महाविद्याओं की उपासना साधक अपनी-अपनी श्रद्धानुसार करते हैं परन्तु साधना में कुछ विशेष करने के लिये दीक्षा ली जाती है।

दश महाविद्याओं से सम्बन्धित कोई भी दीक्षा दो विभिन्न खण्डों में विभाजित है। इन खण्डों को कुल कहते हैं। यह दो नामों से जाने जाते हैं जिन्हें 'कालीकुल' तथा 'श्रीकुल' कहते हैं।

जो साधक भगवती काली, तारा तथा छिन्नमस्तिका की दीक्षा लेते हैं और उन्हें अपना आराध्य मानते हैं, उन्हें 'कालीकुल' के साधक माना जाता है। शेष सभी महाविद्याओं के साधक 'श्रीकुल' के साधक माने जाते हैं।

आद्या महादेवी

अपने कुलानुसार दश महाविद्याओं की उपासना अपनी विभिन्नता को प्राप्त होती है। महाविद्याओं को आदि स्वरूप माना जाता है अर्थात् जब कुछ नहीं था तब यह महादेवियाँ विद्यमान थीं। आदि का सूचक शून्य हुआ करता है। शून्य अर्थात् कुछ भी नहीं। यह शून्यरूपा शक्ति काली है। यही मूल तत्त्व है। महानिर्गुण स्वरूप होने के कारण इनकी उपमा अन्धकार से की जाती है। यह मूल तत्त्व महासगुण स्वरूप होने

के कारण सुन्दरी कहलाता है।

"सा काली द्विविधा प्रोक्ता श्यामा रक्ता प्रभेदतः।
श्यामा तु दक्षिणा प्रोक्ता रक्ता श्री सुन्दरि मता॥"

अर्थात् जो काली देवी हैं वो श्यामा तथा रक्ता के भेद से दो रूपों में मानी जाती हैं। श्याम स्वरूप वाली देवी को 'काली' तथा रक्त स्वरूप वाली देवी को 'श्री सुन्दरी' कहते हैं।

इसी देवी ने समूचे ब्रह्माण्ड का श्रीगणेश किया था और इसकी उत्पत्ति से पूर्व वह केवल स्वयं ही थी। इस आदि अन्त रहित सत्ता को कामकला तथा शृंगकला के नाम से भी जानते हैं। यही मूल शक्ति त्रिदेवों अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के प्रादुर्भाव का कारण है। इन्हीं से समस्त मरुदगण, गन्धर्व, अप्सरायें, किन्नरादि की रचना हुई है। समस्त दिशाओं में दृश्य तथा अदृश्य इन्हीं के द्वारा सृजित हुआ है।

"तदेतत् सर्वाकार महात्रिपुरसुन्दरीम्।
त्व चाव च सर्व विश्व सर्वदेवताः॥
इतरत् सर्वं महात्रिपुरसुन्दरीम्।
सत्यमेकं ललिताऽऽख्यंवस्तु।
तदद्वितीयम् खण्डार्थं परब्रह्म॥"

अर्थात् इस भाँति से महात्रिपुरसुन्दरी समस्त स्थूलों में अधिष्ठित है। मैं, तुम, देवतादि, समूची-सृष्टि, दृश्य अदृश्य सभी कुछ स्वयं महात्रिपुरसुन्दरी ही है। जो सत्य है, जो परब्रह्म तत्त्व है वह ललिता अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरी ही है।

जिस भाँति से जल केवल जल होता है परन्तु गंगा का जल गंगा-जल, यमुना का जल यमुनाजल कहलाता है। इसी प्रकार शून्यरूपा मूल प्रकृति को भुवनेश्वरी, काली तथा सुन्दरी कहा जाता है। मूलतः यह सब एक ही हैं।

''इयं नारायणी काली तारा स्यात् शून्यवाहिनी।
सुन्दरीम् रक्तकालीयं भैरवी नादिनी तथा॥''

अर्थात् जो नारायणी है वह काली ही है। यह काली, तारा रूप से शून्य में निवास करती है। रक्तकाली को सुन्दरी कहते हैं और फिर यही शक्ति भैरवी नादिनी आदि स्वरूपों से जानी जाती है।

दश महाविद्याओं की एक साथ पूजा कैसे हो?

दश महाविद्या की उपासना भोगसिद्धियों के साथ जीवन्मुक्ति के लिए भी अचूक साधन है। अतः यह आवश्यक है कि इनका पूजा-विधान तथा स्थापना-विधि विशेष रूप से समझ ली जाय। महाभागवत में नारद जी के प्रश्न करने पर महोदव जी ने देवपंचायतन के समान दशायतन महाविद्या पूजा की विधि छियत्तरवें अध्याय में बतायी है। उन्होंने कहा कि काली अथवा कामाख्या को केन्द्र में रखकर काली के बायें भाग में तारा तथा दाहिने भाग में भुवनेश्वरी की प्रतिष्ठा करे। अग्निकोण में षोडशी तथा नैर्ऋत्य में भैरवी की स्थापना करे। वायव्य में छिन्नमस्ता तथा पीठ भाग में बगलामुखी को विराजमान करे। ईशान कोण में त्रिपुरसुन्दरी, ऊर्ध्व भाग में मातंगी, पश्चिम में धूमावती की पूजा करे। इस महापीठ के नीचे महारुद्र तथा ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं की उनकी शक्तियों के साथ प्रतिष्ठा करे।

दश महाविद्या

तन्त्र सार

१. काली
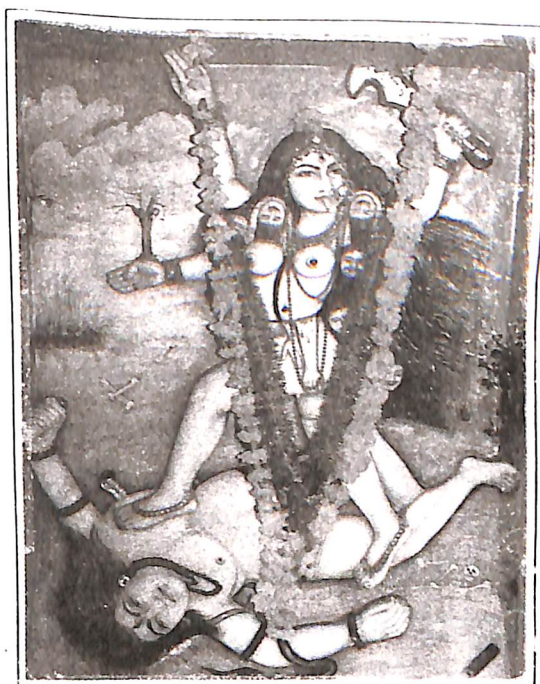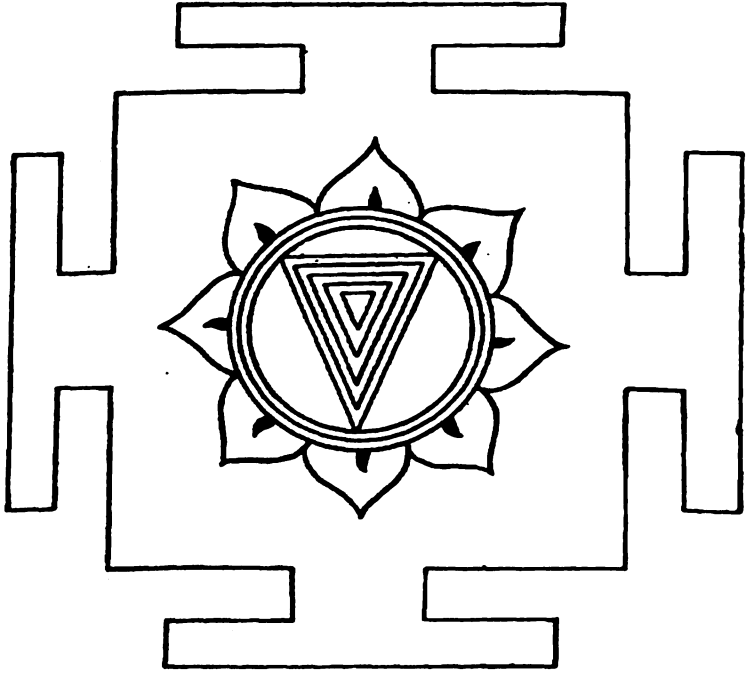
१. श्री काली यन्त्र

१. काली

प्रथम महाविद्या काली को आद्य महाविद्या भी कहा जाता है क्योंकि उपरोक्त वर्णन के अतिरिक्त भी इन्हें प्रथम स्थान दिया गया है। इन्हें भगवान विष्णु की योगनिद्रा भी कहते हैं।

किसी भी महाविद्या की माया ग्रन्थों में तो उपलब्ध होती हैं परन्तु उनका वास्तविक प्रादुर्भाव प्रायः लुप्त ही रहता है। इसी भाँति से काली का प्रादुर्भाव भी लुप्त है क्योंकि जब कोई नहीं था तब इन्हें कौन जानता? कैसे जानता? इस पर भी कुछ प्राच्य विशारदों ने इनके ऊपर भिन्न-भिन्न दृष्टि डाली है, जो कि निम्नलिखित भाँति से अलग-अलग है—

यह देवी नित्य और अजन्मा है तथापि देवकार्य सम्पन्न करने के निमित्त जब यह अभिन्न रूप से अवतरित होती है तब उसी रूप से जानी जाती है। कल्प के अन्त में जब समस्त सृष्टि एकार्णव में निमग्न हो रही थी तब भगवान विष्णु क्षीरसागर में, शेषनाग की शय्या पर योगनिद्रा का आश्रय लेकर निद्रामग्न हो गये थे। ऐसे समय पर उनके कानों की मैल से दो भयानक असुर उत्पन्न हुये जो कि मधु तथा कैटभ के नाम से विख्यात हुये हैं। यह दोनों ही ब्रह्मा को खाने के लिये अग्रसर हुये। भगवान की नाभि कमल पर स्थित ब्रह्मा यह दृश्य देखकर विचलित हो उठे। उन्होंने भगवान को अत्यधिक पुकारा, परन्तु वह सोये रहे। तब उन्होंने आद्यभवानी की स्तुति की जिसके फलस्वरूप भगवान के नेत्र,

मुख, नासिका, बाहु, हृदय तथा वक्षःस्थल से निकल कर काली जी उनके समक्ष खड़ी हो गईं।

एक अन्य वृतान्त भी पाया जाता है, जिसके अनुसार चण्ड-मुण्ड से युद्ध करते हुये अम्बिका को अतिशय क्रोध उपजा, जिसके कारण उनका मुखमण्डल काला हो गया। ललाट पर भौंहे टेढ़ी हो गयीं और वहाँ से तत्क्षण विकरालमुखी काली का प्रादुर्भाव हुआ।

महर्षि वाल्मीकि ने रामायण लिखी थी जो कि आज सर्वविदित है। इन्होंने एक और गुप्त रामायण लिखी थी जिसे कि अद्भुत रामायण कहते हैं। इसके अनुसार सहस्रमुखी रावण से युद्ध करते हुये भगवान राम मूर्च्छित हो जाते हैं। सीता जी उन्हें मृत हुआ समझ कर अतिशय क्रोध करने के कारण काली हो जाती हैं और सहस्रमुखी रावण का वध कर देती हैं।

इनके भव्य श्रीविग्रह आसाम, बंगाल में अत्यधिक दृष्टिगोचर होते हैं। जालन्धर-पीठ पर 'चामुण्डा देवी' नामक श्रीविग्रह भी इन्हीं का स्वरूप है।

काली मन्त्र[1]

क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं स्वाहा।

कालीध्यानम्

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्।
सद्यश्छिन्नशिरः खंगवामाधोर्ध्वकराम्बुजाम्।
अभयं वरदञ्चैव दक्षिणाधोर्ध्वपाणिकाम्।

---

[1] इस विषय पर विस्तृत ज्ञान मेरी पुस्तक 'संकट मोचिनी कालिका सिद्धि' में देखें।

महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बरीम्।
कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्च्चिताम् ।
कर्णावतंसनानीतशवयुग्मभयानकाम् ।
घोरदंष्ट्राकरालास्यां पीनोन्नतपयोधराम्।
शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्।
सृक्कच्छटागलद्रक्तधाराविस्फूरिताननाम्।
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्।
बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम् ।
दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम्।
शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम्।
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्।
महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम्।
सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम्॥

कालिकादेवी भयंकर मुखवाली, घोरा, खुले बालों वाली, चार हाथों से और मुण्डमाला से अलंकृत हैं। उनके बायीं तरफ के दोनों हाथों में तत्काल काटे गये शव का सिर एवं खंड और दक्षिण तरफ के दोनों हाथों में अभय और वरमुद्रा सुशोभित हैं। कण्ठ में मुण्डमाला है काले मेघ के समान श्यामवर्ण है, दिगम्बरी है। कण्ठ में स्थित मुण्डमाला से टपकते हुए रुधिर से लिप्त शरीर वाली है। घोर दंष्ट्रा है करालवदना है और उन्नत पीनस्तन वाली हैं। उनके दोनों कानों में मृतक के मुण्ड भूषण रूप से शोभा पा रहे हैं। देवी की कमर में शव के हाथों की करधनी विद्यमान है। वह हास्यमुखी हैं। उनके दोनों होठों से रुधिरधारा क्षरित हो रही है जिसके कारण हृदय कम्पित होता है। देवी घोर शब्द करने वाली हैं महाभयंकरी हैं और यह श्मशानवासिनी हैं। उनके तीनों नेत्र नवीन सूर्य के समान हैं। वह बड़े दाँत और लम्बे लहराते केशों से युक्त हैं। वह शवरूपी महादेव के हृदय पर स्थित हैं। उनके चारों ओर

भीषण गीदड़ियाँ भ्रमण करती हैं। देवी महाकाल के सहित विपरीत रता (अर्थात् मैथुन) में आसक्त हैं। वह प्रसन्नमुखी सुहास्यवदना है यह समस्त कामनाओं की दात्री है।

कालीस्तव

कर्पूरं मध्यमान्त्यस्वरपररहितं सेन्दुवामाक्षियुक्तं।
बीजन्ते मातरेतत्त्रिपुरहरवधु त्रिःकृतं ये जपन्ति।
तेषां गद्यानि च मुखकुहरादुल्लसन्त्येव वाचः।
स्वच्छन्दं ध्वान्तधाराधररुचिरुचिरे सर्व्व सिद्धिं गतानाम्।

हे जननी! हे सुन्दरी! तुम्हारे देह की कान्ति श्यामवर्ण मेघ के समान मनोहर है। जो तुम्हारे एकाक्षरी बीज को त्रिगुना करके जप करते हैं, वह शिव की अणिमादि अष्टसिद्धियों को प्राप्त करते हैं और उनके मुख से गद्यपद्यमयी वाणी निकलती हैं।

ईशानः सेन्दुवामश्रवणपरिगतं बीजमन्यन्महेशि द्वन्द्वं
ते मन्दचेता यदि जपति जनो वारमेकं कदाचित्।
जित्वा वाचामधीशं धनदमपि चिरं मोहयन्नम्बुजाक्षीवृन्दं
चन्द्रार्द्धचूडे प्रभवति स महाघोरबाणावतंसे॥

हे महेश्वरी! तुम्हारे भाल पर अर्द्धचन्द्र शोभा पाता है। दोनों कानों में दो महाभयंकर बाण अलंकार स्वरूप से विद्यमान हैं। विषयों से घिरे पुरुष भी तुम्हारे 'हूं' बीज को दूना करके पवित्र अथवा अपवित्र काल में एक बार जप करने से विद्या और धन द्वारा सुर गुरु भृगु और कुबेर को परास्त करने में समर्थ हो जाता है। वह पुरुष सुन्दर स्त्रियों को भी मोहित कर सकता है, इसमें सन्देह नहीं।

ईशौ वैश्वानरस्थः शशधरविलसद्वामनेत्रेण युक्तो
बीजं ते द्वन्द्वमन्यद्वि गलितचिकुरे कालिके ये जपन्ति

द्वेष्टारंघ्नन्ति ते च त्रिभुवनमपि ते वश्यभावं नयन्ति
सृक्कद्वन्द्वास्त्रधाराद्वयधरवदने दक्षिणे कालिकेति॥

हे खुले एवं लहराते केशों वाली! तुम विश्वसंहर्त्ता काल के संग विहार करती हो। इसी कारण तुम्हारा नाम 'कालिका' है। तुम बाँये होकर दक्षिण में स्थित महादेव को पराजित करती हुई स्वयं निर्वाण का दान करती हो। इसी कारण 'दक्षिणा' नाम से तुम प्रसिद्ध हुई हो। तुमने प्रणवरूपी शिव का अपने महात्म्य से तिरस्कार किया है। तुम्हारे दोनों होठों से रुधिरधारा क्षरित होने के कारण तुम्हारा बदन परम शोभा को पाता है। जो तुम्हारे 'ह्रीं ह्रीं' इन दोनों बीजों को जप करते हैं, वह शत्रुओं को पराजित कर त्रिभुवन को वशीभूत कर सकते हैं। अथवा जो इस मन्त्र को जपते हैं, वह शत्रुकुल को वशीभूत कर त्रिभुवन में विचरण किया करते हैं।

उर्ध्वद्वामे कृपाणं करतलकमले छिन्नमुण्डं तथाधः
सव्ये चाभीर्वरञ्च त्रिजगदघहरे दक्षिणे कालिकेति।
जप्त्वैतन्नामवर्णं तव मनुविभवं भावयन्त्येतदम्ब
तेषामष्टौ करस्थाः प्रकटितवदने सिद्धयस्त्र्यम्बकस्य॥

हे जगन्मातः! तुम संसार के पापियों का पाप हरती हो। तुम्हारे दाँतों की पंक्ति महाभयंकर है। तुमने ऊपर के बाँये हाथ में खंग नीचे के बाँये हाथ में मुण्ड, ऊपर के दाहिने हाथ में अभय मुद्रा और नीचे के दक्षिण हाथ में वर मुद्रा को धारण किया है। जो तुम्हारे नाम के स्वरूप 'दक्षिणकालिके' जपा करते हैं जो तुम्हारे स्वरूप का मनन किया करते हैं, उनके पास अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ उपस्थित हुआ करती हैं।

वर्गाद्यं वह्निसंस्थं विधुरति ललितं तत्त्रयं कूर्च्चयुग्मं
लज्जाद्वन्द्वञ्च पश्चात्स्मितमुखि तदधष्टद्वयं योजयित्वा
मातर्ये ये जपन्ति स्मरहर महिले भावयन्ते स्वरूपं ते
लक्ष्मीलास्यलीलाकमलदलदृशः कामरूपा भवन्ति॥

हे स्मरहर की महिले! तुम्हारा श्रीमुखमण्डल मृदु-मधुर हास्य सर्वदा शोभित है, जो मनुष्य तुम्हारे स्वरूप का ध्यान करते हुए तुम्हारा नवाक्षरमंत्र (अर्थात् क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहा) का जप किया करते हैं, वह साक्षात् कामदेव के समान मनोहर आकर्षण शक्ति को प्राप्त करते हैं। उनके नेत्र कमल की लीला पद्म दल के सदृश लम्बी और रमणीय होते हैं।

प्रत्येकं वा त्रयं वा द्वयमपि च परं बीजमत्यन्तगुह्यं
त्वन्नाम्ना योजयित्वा सकलमपि सदा भाववन्तो जपन्ति। तेषां नेत्रारविन्दे विहरति कमला वक्त्रशुभ्रांशुबिम्बे वाग्देवी दिव्यमुण्डस्त्रगतिशयलसत्कण्ठपीनस्तनाढ्ये ॥

हे जगन्मातः! तुम्हारे उपदेशानुसार यह त्रिभुवन अपने-अपने कार्य में नियुक्त होता है, इसी कारण तुम 'देवी' नाम से कथित हो। तुम्हारा कण्ठ मुण्डमाला के धारण से, परम शोभा को पाता है। तुम्हारे वक्ष पर पुष्ट ऊँचे स्तन शोभित हो विराजित हैं। हे महेश्वरी! जो पुरुष तुम्हारा ध्यान करते हुए 'दक्षिणेकालिके' और अन्त में पूर्वकथित एकाक्षर मंत्र अथवा यह त्रिगुणित तीन अक्षर मंत्र, वा 'ईशो वैश्वानरस्थं' श्लोककथित द्वयक्षर मंत्र या 'वर्गाद्यः' इत्यादि श्लोक में कहे नवाक्षर मंत्र अथवा गुह्य बाइसाक्षर मंत्र मिलाकर जप करते हैं, लक्ष्मी उनके नेत्र, पद्मों में और सरस्वती जिह्वा पर निवास करती है।

गतासूनां बाहु प्रकरकृतकञ्चीपरिलस-
न्नितम्बां दिग्वस्त्रां त्रिभुवनविधात्रीं त्रिनयनाम्॥
श्मशानस्थे तल्पे शवहृदि महाकालसुरत-
प्रसक्तां त्वां ध्यायञ्जननि जडचेता अपि कविः ॥

हे जननी! तुम त्रिलोक की सृष्टिकर्त्री त्रिलोचना हो। तुम दिगम्बरी हो। तुम्हारे नितम्ब बाहुनिर्मित, कर काञ्ची से अलंकृत हैं। तुम श्मशान

में स्थित शवरूपी महादेव के हृदय पर महाकाल के संग रति क्रीड़ा में रत हो। विषयमत्त व्यक्ति भी तुम्हारा इस प्रकार ध्यान करने से अलौकिक कवित्वशक्ति पाता है।

शिवाभिर्घोराभिः शवनिवसमुण्डास्थिनिकरैः।
परं संकीर्णायां प्रकटितचितायां हरवधूम्॥
प्रविष्टां सन्तुष्टामुपरि सुरतेनातियुवतीं।
सदा त्वां ध्यायन्ति क्वचिदपि न तेषां परिभवः॥

हे देवी! हे कालिके! तुम महादेव की प्रियतमा हो। तुम विपरीत विहार में सन्तुष्ट होती हो। तुम नवयुवती हो। जिस स्थान में भयंकर शिवायें भ्रमण करती हैं तुम उसी शव मुंडों की अस्थियों से आच्छादित श्मशान में नृत्य किया करती हो। तुम्हारा इस प्रकार मनन करने से पराभव को प्राप्त नहीं होना पड़ता है।

वदामस्ते किं वा जननि वयमुच्चैजैडधियो।
न धाता नार्पाशो हरिरपि न ते वेत्ति परमम्॥
तथापि त्वद्भक्तिर्मुखरयति चास्माकमसिते।
तदेतत्क्षन्तव्यं न खलु शिशुरोषः समुचितः॥

हे जननी! जब महादेव, ब्रह्मा और नारायण भी तुम्हारा परमतस्व नहीं जानते, तब मूढ़मति हम तुम्हारा तत्व किस प्रकार से वर्णन कर सकते हैं? हम जो तुम्हारे विषय में प्रवृत्त हुए हैं। तुम्हारे प्रति भजन में हमारी उत्सुकता ही उसका कारण है। हमें अनधिकार विषय में उद्यम करता हुआ देखकर तुमको क्रोध उत्पन्न हो सकता है किन्तु मूर्ख सन्तान जानकर हमको क्षमा कर देना।

समन्तादापीनस्तनजघनधृग्यौवनवती।
रतासक्तो नवतं यदि जपति भक्तस्तवममुम्॥
विवासास्त्वां ध्यायन् गलितचिकुरस्तस्य वशगाः।
समस्ताः सिद्धोघा भुवि चिरतरं जीवति कविः॥

समाराध्यामाद्यां हरिहरविरिञ्चादिविबुधैः।
प्रसक्तोऽस्मि स्वैरं रतिरस महानन्दनिरताम्॥

हे जगदम्बे! तुम निरन्तर रति रस के आनन्द में निमग्न रहती हो। तुम्हीं सबकी आदिस्वरूपिणी हो। अनेक मूढ़ बुद्धि मनुष्य अन्यान्य देवताओं की आराधना करते हैं किन्तु वे अवश्य ही तुम्हारे उस अनिर्वचनीय परम तत्व को नहीं जानते। उनके उपास्य ब्रह्मा, विष्णु, शिव इत्यादि देवता लोग भी सदा तुम्हारी उपासना में ही लगे रहते हैं।

धरित्री कीलालं शुचिरपि समीरोऽपि गगनं।
त्वमेका कल्याणी गिरिशरमणी कालि सकलम्॥
स्तुतिः का ते मातस्तवकरुणया मामगतिकं।
प्रसन्ना त्वं भूया भवमनु न भूयान्मम जनुः॥

हे जननी! क्षिति, जल, तेज, वायु और आकाश यह पंचभूत भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हीं भगवान् महेश्वर की हृदय रंजिनी हो। तुम्हीं इस त्रिभुवन का मंगल करती हो। हे जननि! इस अवस्था में तुम्हारी फिर क्या स्तुति करूँ? क्योंकि किसी विलक्षण गुण का आरोप न करके वर्णन करने की स्तुति कहते हैं। हे माता! तुम में कौन सा गुण नहीं है, जो उसको जान करके तुम्हारा स्तव न करूँ? तुम स्वयं जगन्मयी माता हो। तुम्हारे विषय में जो कीर्तन है वह सब तुम्हारे स्वरूप वर्णन पर आश्रित है। हे कृपामयी! तुम दया प्रकाश करके इस निराश्रय सेवक के प्रति सन्तुष्ट प्रसन्न हो तो फिर इस सेवक को संसार में पुनः जन्म लेना नहीं पड़ेगा।

श्मशानस्थस्स्वस्थो गलितचिकुरो दिक्पटधरः।
सहस्त्रन्त्वर्काणां निजगलितवीर्य्येण कुसुमम्॥
जपंस्त्वत्प्रत्येकममुमपि तव ध्याननिरतो।
महाकालि स्वैरं स भवति धरित्रीपरिवृढः॥

हे महाकालिके! जो मनुष्य श्मशान भूमि में वस्त्रहीन और बाल

खोलकर यथाविधि आसन पर बैठकर स्थिर मन से तुम्हारे स्वरूप का मनन/ध्यान करते हुए तुम्हारे मन्त्र का जाप करता है, और अपने निकले वीर्य में सहस्र आक के फूल एक-एक करके तुम्हारी प्रसन्नता के निमित्त अर्पण करता है, वह सम्पूर्ण धरती का स्वामी होता है।

गृहे सम्मार्ज्जन्या परिगलितवीर्य्यं हि चिकुरं।
समूलं मध्याह्ने वितरति चितायां कुजदिने॥
समुच्चार्य्य प्रेम्णा जपमनु सकृत कालि सततं।
गजारूढो याति क्षितिपरिवृढः सत्कविवरः॥

हे देवी! जो मंगलवार के दिन मध्याह्न काल के समय कंघी द्वारा शृंगार किये गृहणी वाले कंघी के समूल केश लेकर पूर्व वर्णित तुम्हारे जिस किसी एक मन्त्र का जप करता हुआ तुम्हें भक्ति सहित वह सामग्री चिताग्नि में अर्पण करता है, वह धरा का अधीश्वर होकर निरन्तर हाथी पर चढ़कर विचरण करने में समर्थ होता है और व्यासादिक कवि कुल की प्रधानता को प्राप्त होता है।

सुपुष्पैराकीर्णं कुसुमधनुषो मंदिरमहो।
पुरो ध्यायन् यदि जपति भक्तस्स्तवममुम्॥
स गन्धर्व्वश्रेणींपतिरिव कवित्वामृतनदी।
नदीनः पर्य्यन्ते परमपदलीनः प्रभवति॥

हे जगन्मातः! साधक यदि स्वयं फलों से रंजित कामगृह को अभिमुख करके मन्त्रार्थ के सहित तुम्हारा ध्यान करता-करता पूर्व वर्णित किसी एक मन्त्र का जप करे, तो वह कवित्व रूपी नदी के सम्बन्ध में समुद्रस्वरूप हो जाता है और महेन्द्र की समानता प्राप्त कर लेता है। वह देहान्त के समय तुम्हारे चरण कमल में लीन होकर मुक्ति प्राप्त करता है तो यह विचित्र बात नहीं है।

त्रिपञ्चारे पीठे शवशिवहृदि स्मेरवदनां।
महाकालेनोच्चैर्मदनरसलावण्यनिरताम्॥

महासक्तो नक्तं स्वयमपि रतानन्दनिरतो।
जनो यो ध्यायेत्त्वामयि जननि स स्यात्स्मरहरः॥

हे जगन्मातः! तुम्हारे मुखमण्डल पर मृदु हास्य विराजित है। तुम सदा शिव के संग विहार अनुभव करती हो। जो साधक रात्रि में अपना विहार सुख अनुभव करता हुआ शव हृदय रूप आसन पर पाँच दशकोण युक्त तुम्हारे यंत्र में तुम्हारा पूर्वोक्त प्रकार से ध्यान करता है, यह शीघ्र शिवत्व का लाभ प्राप्त करता है।

सलोमास्थि स्वैरं पललमपि मार्ज्जारमसिते।
परञ्चौष्ट्रं मैषं नरमहिषयोश्छागमपि वा॥
बलिन्ते पूजायामपि वितरतां मर्त्यवसतां।
सतां सिद्धिः सर्व्वा प्रतिपदमपूर्व्वा प्रभवति॥

हे जननी! पृथ्वीवासी साधकगण यदि तुम्हारी पूजा में बिल्ली का माँस, ऊँट का माँस, नरमाँस, महिषमाँस अथवा छाग माँस रोमयुक्त और अस्थियों के सहित अर्पण करें, तो उनके चरण कमल में आश्चर्य भरे विषय सिद्ध होकर विराजित होते हैं।

वशी लक्षं मन्त्रं प्रजपति हविष्याशनरतो।
दिवा मातर्युष्मच्चरणयुगलध्याननिपुणः॥
परं नक्तं नग्नो निधुवनविनोदेन च मनुं।
जनो लक्षं स स्यात्स्मरहरसमान, क्षितितले॥

हे जगन्मातः! जो इन्द्रियों को अपने वशीभूत रखकर हविष्य भोजनपूर्वक प्रातःकाल से दिन के दूसरे प्रहर तक तुम्हारे दोनों चरणों में चित्त लगाकर जप करते हैं, और पशु भाव से एक लाख जप का पुरश्चरण करते हैं, अथवा जो साधक रात्रि काल में नग्न और रति में लीन होकर वीरसाधनानुसार एक लाख जप का पुरश्चरण करते हैं, यह दोनों प्रकार के साधक पृथ्वी तल में स्मरहर शिव के समान होते हैं।

इदं स्तोत्रं मातस्तवमनुसमुद्धारणजपः।
स्वरूपाख्यं पादाम्बुजयुगलपूजाविधियुतम्॥
निशार्द्धं वा पूजासमयमधि वा यस्तु पठति।
प्रलापे तस्यापि प्रसरति कवित्वामृतरसः॥

हे जननी! मेरे द्वारा वर्णित इस स्तव में तुम्हारे मन्त्र का उद्धार और तुम्हारे स्वरूप का वर्णन हुआ है। तुम्हारे चरण कमल की पूजा विधि का भी विधान इसमें व्यक्त किया है। जो साधक निशा द्विपहर काल में अथवा पूजा काल में इस स्तव को पढ़ता है, उसकी अनर्थक वाणी भी कवित्व सुधारस को प्रवाहित करती है।

कुरंगाक्षीवृन्दं तमनुसरति प्रेमतरलं।
वशस्तस्य क्षोणी पतिरपि कुबेरप्रतिनिधिः॥
रिपुः कारागारं कलयति च तत्केलिकलया।
चिरं जीवन्मुक्तः स भवति च भक्तः प्रतिजनुः॥

मृग के समान नेत्रों वाली नारियाँ इस स्तव को पढ़ने वाले साधक को प्रिय जानकर उसकी अनुगामिनी होती हैं। कुबेर के समान राजा भी उसके वश में रहते हैं। उस साधक के शत्रुगण कारागार में बन्द होते हैं। वह साधक प्रत्येक जन्म में जगदम्बिका का परम भक्त होता है। वह सर्वदा महाआनन्द से विहार करता हुआ अन्त में मोक्ष को प्राप्त करता है।

जगन्मंगल कालीकवचम्

भैरव्युवाच

कालीपूजा श्रुता नाथ भावाश्च विविधः प्रभो।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कवचं पूर्वसूचितम्॥
त्वमेव शरणं नाथ त्रापि मां दुःखसंकटात्।
त्वमेव स्त्रष्टा पाता च संहर्ता च त्वमेव हि॥

भैरवी ने पूछा—हे नाथ! हे प्रभो! मैंने काली पूजा और उसके विविध भाव सुने। अब पूर्व में व्यक्त किया कवच सुनने की इच्छा हुई है, उसका वर्णन करके मेरी दुःख संकट से रक्षा कीजिये। आप ही सृष्टि की रचना करते हो, आप ही रक्षा करते हो और आप ही संहार करते हो। हे नाथ! तुम्हीं मेरे आश्रय हो।

भैरव उवाच

रहस्यं शृणु वक्ष्यामि भैरवि प्राणवल्लभे।
श्रीजगन्मंगलं नाम कवचं मंत्रविग्रहम्।
पठित्वा धरयित्वा च त्रैलोक्यं मोहयेत् क्षणात्॥

भैरव ने कहा—हे प्राण वल्लभे! 'श्रीजगन्मंगलनामक' कवच कहता हूँ। सुनो! इसका पाठ करने अथवा इसे धारण करने से शीघ्र त्रिलोकी को मोहित किया जा सकता है।

नारायणोऽपि यद्धृत्वा नारी भूत्वा महेश्वरम्।
योगेशं क्षोभमनयद्यद्धृत्वा च रघूद्वहः।
वरवृप्तान् जघानैव रावणादिनिशाचरान्॥

नारायण ने इसको धारण करके नारी रूप से योगेश्वर शिव को मोहित किया था। श्रीराम ने इसी को धारण करके रावणादि राक्षसों का संहार किया था।

यस्य प्रसादादीशोऽहं त्रैलोक्यविजयी प्रभुः।
धनाधिपः कुबेरोऽपि सुरेशोऽभूच्छत्रीपतिः।
एवं हि सकला देवाःसर्व्वसिद्धीश्वराः प्रिये॥

हे प्रिये! इसके ही प्रसाद से मैं त्रैलोक्यजयी हुआ हूँ। कुबेर इसके प्रसाद से धनाधिप हुए हैं। शचीपति सुरेश्वर और सम्पूर्ण देवतागण इसी के प्रभुत्व से सर्वसिद्धिश्वर हुए हैं।

श्रीजगन्मंगलस्यास्य कवचस्य ऋषिश्शिवः।
छन्दोऽनुष्टुब्देवता च कालिका दक्षिणेरिता॥
जगतां मोहने दुष्टानिग्रहे भुक्तिमुक्तिषु।
योषिदाकर्षणे चैव विनियोगः प्रकीर्त्तितः॥*

इस कवच के ऋषि शिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता दक्षिण कालिका और मोहन दुष्ट निग्रह भुक्तिमुक्ति और योषिदाकर्षण के लिए विनियोग है।

शिरो मे कालिका पातु क्रींकारैकाक्षरी परा।
क्रीं क्रीं क्रीं मे ललाटञ्च कालिका खंग धारिणी॥
हुं हुं पातु नेत्रयुग्मं ह्रीं ह्रीं पातु श्रुती मम।
दक्षिणा कालिका पातु घ्राणयुग्मं महेश्वरी॥
क्रीं क्रीं क्रीं रसनां पातु हुं हुं पातु कपोलकम्।
वदनं सकलं पातु ह्रीं ह्रीं स्वाहा स्वरूपिणी॥

कालिका और क्रींकारा मेरे मस्तक की, क्रीं क्रीं क्रीं और खंगधारिणी कालिका मेरे ललाट की, हुं हुं दोनों नेत्रों की, ह्रीं ह्रीं मेरे कर्म की, दक्षिण कालिका दोनों नासिकाओं की, क्रीं क्रीं क्रीं मेरी जीभ की, हुं हुं कपोलों की और ह्रीं ह्रीं स्वाहा स्वरूपिणी महाकाली मेरी सम्पूर्ण देह की रक्षा करें।

* इसे विनियोग मन्त्र कहते हैं। प्रत्येक जपादि के अपने-अपने विनियोग होते हैं।

द्वाविंशत्यक्षरी स्कन्धौ महाविद्या सुखप्रदा।
खंगमुण्डधरा काली सर्व्वांगमभितोऽवतु॥
क्रीं हुं ह्रीं त्र्यक्षरी पातु चामुण्डा हृदयं मम।
हे हुं ओं ऐं स्तनद्वन्द्वं ह्रीं फट् स्वाहा ककुत्स्थलम्॥
अष्टाक्षरी महाविद्या भुजौ पातु सकर्त्तृका।
क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं करौ पातु षडक्षरी मम॥

बाईस अक्षर की गुह्य विद्या रूप सुखदायिनी महाविद्या मेरे दोनों स्कन्धों की, खंगमुण्डधारिणी काली मेरे सर्वांग की, क्रीं हुं ह्रीं चामुण्डा मेरे हृदय की, ऐं हुं ओं ऐं मेरे दोनों स्तनों की, ह्रीं फट् स्वाहा मेरे कन्धों की एवं अष्टाक्षरी महाविद्या मेरी दोनों भुजाओं की और क्रीं इत्यादि षडक्षरी विद्या मेरे दोनों हाथों की रक्षा करें।

क्रीं नाभिं मध्यदेशञ्च दक्षिणा कालिकाऽवतु।
क्रीं स्वाहा पातु पृष्ठन्तु कालिका सा दशाक्षरी॥
ह्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके हूं ह्रीं पातु कटीद्वयम्।
काली दशाक्षरी विद्या स्वाहा पातूरुयुग्मकम्।
ॐ ह्रां क्रीं मे स्वाहा पातु कालिका जानुनी मम॥
कालीहृन्नामविद्येयं चतुर्वर्गफलप्रदा।

क्रीं मेरी नाभि की, दक्षिण कालिका मेरे मध्य, क्रीं स्वाहा और दशाक्षरी विद्या मेरी पीठ की, ह्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके हुं ह्रीं मेरी कटि की, दशाक्षरीविद्या मेरे ऊरुओं की और ओ३म् ह्रीं क्रीं स्वाहा मेरी जानु की रक्षा करें। यह विद्या चतुर्वर्गफलदायिनी है।

क्रीं ह्रीं ह्रीं पातु गुल्फं दक्षिणे कालिकेऽवतु।
क्रीं हूँ ह्रीं स्वाहा पदं पातु चतुर्द्दशाक्षरी मम॥

क्रीं ह्रीं ह्रीं मेरे गुल्फ की, क्रीं हूँ ह्रीं स्वाहा और चतुर्द्दशाक्षरीविद्या मेरे शरीर की रक्षा करें।

खंगमुण्ड धरा काली वरदा भयवारिणी।
विद्याभिःसकलाभिः सा सर्व्वांगमभितोऽवतु॥

खंग मुण्डधरा वरदा भवहारिणी काली सब विद्याओं के सहित मेरे सर्वांग की रक्षा करें।

काली कपालिनी कुल्वा कुरुकुल्ला विरोधिनी।
विप्रचित्ता तथोग्रोग्रप्रभा दीप्ता घनत्विषः॥
नीला घना बालिका च माता मुद्रामिता च माम्।
एताः सर्व्वाः खंगधरा मुण्डमालाविभूषिताः॥
रक्षन्तु मां दिक्षु देवी ब्राह्मी नारायणी तथा।
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता॥
वाराही नारसिंही च सर्व्वाश्चामितभूषणाः।
रक्षन्तु स्वायुधैर्दिक्षु मां विदिक्षु यथा तथा॥

ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा, कुमारी, अपराजिता, वाराही, नृसिंही देवियों ने सर्व आभूषण धारण किए हुये हैं। यह सब माताएँ मेरे दिक् विदिक् की सर्वदा सर्वत्र रक्षा करें।

इत्येवं कथितं दिव्यं कवचं परमाद्भुतम्।
श्रीजगन्मंगलं नाम महामंत्रौघविग्रहम्॥
त्रैलोक्याकर्षणं ब्रह्मकवचं मन्मुखोदितम्।
गुरुपूजां विधायाथ गृह्णीयात् कवचं ततः।
कवचं त्रिःसकृद्वापि यावज्जीवञ्च वा पुनः॥

यह 'जगन्मंगलनामक' महामन्त्रस्वरूपी परम अद्भुत दिव्य कवच कहा गया है। इसके द्वारा त्रिभुवन आकर्षित होता है। गुरु की पूजा करने के पश्चात् इस कवच को ग्रहण करना चाहिये। इसका एक बार या तीन बार अथवा यावज्जीवन पाठ करें।

एतच्छतार्द्धमावृत्य त्रैलोक्यविजयो भवेत्।
त्रैलोक्यं क्षोभयत्येव कवचस्य प्रसादतः।
महाकविर्भवेन्मासात्सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्॥

इसकी पचास आवृत्ति करने से त्रैलोक्य विजयी हो सकता है। इस कवच के प्रसाद से त्रिभुवन क्षोभित होता है। इस कवच के प्रसाद से एक मास में सर्व्वसिद्धीश्वर हुआ जा सकता है।

पुष्पाञ्जलीन् कालिकायैमूलेनैव पठेत् सकृत्।
शतवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात्॥

मूल मन्त्र द्वारा कालिका को पुष्पाञ्जलि देकर इस कवच का एक पाठ करने से शतसहस्रवार्षिकी पूजा का फल प्राप्त हो जाता है।

भूर्ज्जे विलिखित्तञ्चैव स्वर्णस्थं धारयेद्यदि।
शिखायां दक्षिणे बाहौ कण्ठे वा धारयेद्यदि॥
त्रैलोक्यं मोहयेत् क्रोधात् त्रैलोक्यं चूर्णयेत्क्षणात्।
बह्वपत्या जीवत्सा भवत्येव न संशयः॥

भोजपत्र अथवा स्वर्णपत्र पर यह कवच लिखकर सिर व दक्षिण हस्त या कण्ठ में धारण करने से धारक त्रिभुवन मोहित या चूर्णकृत करने में समर्थ हो जाता है। नारी जाति बहुत सन्तान देने वाली और जीव वत्सा होती है। इसमें संदेह नहीं करना चाहिए।

न देयं परशिष्येभ्यो ह्यभक्तेभ्यो विशेषतः।
शिष्येभ्यो भक्तियुक्तेभ्यम्चान्यथा मृत्युमाप्नुयात्॥
स्पर्द्धामुद्धूय कमला वाग्देवी मंदिरे मुखे।
पौत्रान्तस्थैर्य्यमास्थाय निवसत्येव निश्चितम्॥

अभक्त अथवा परशिष्य को यह कवच प्रदान न करें। केवल भक्ति युक्त अपने शिष्य को ही दें। इसके अन्यथा करने से मृत्यु के मुख में गिरना होता है। इस कवच के प्रसाद से लक्ष्मी निश्चल होकर साधक के घर में और सरस्वती उसके मुख में वास करती है।

इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेत्कालिदक्षिणाम्।
शतलक्षं प्रजप्यापि तस्य विद्या न सिध्यति।
स शस्त्रघातमाप्नोति सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात्॥

इस कवच को न जानकर जो पुरुष काली मन्त्र का जाप करता है वह सौ लाख जपने पर भी उसकी सिद्धि को प्राप्त नहीं कर पाता है और वह पुरुष शीघ्र ही शस्त्राघात से प्राण त्याग्र करता है।

दश महाविद्या
तन्त्र सार

२. तारा

२. श्री तारा यन्त्र

२. तारा

जब काली ने नीला रूप ग्रहण किया तो वह तारा कहलाई। यह देवी तारक है अर्थात् मोक्ष देती हैं। अत: इन्हें तारा कहते हैं। उपासना करने पर यह देवी वाक्य सिद्धि प्रदान करती है, अत: इन्हें नील-सरस्वती भी कहते हैं। यह भी मान्यता है कि हयग्रीव का वध करने के लिये देवी ने नीला विग्रह ग्रहण किया था। यह शीघ्र प्रभावी हैं अत: इन्हें उग्रा भी कहते हैं। उग्र होने के कारण इन्हें उग्रतारा भी कहा जाता है। भयानक से भयानक संकटादि में भी अपने साधक को यह देवी सुरक्षित रखती है अत: इन्हें उग्रतारिणी भी कहते हैं। कालिका को भी उग्रतारा कहा जाता है। इनका उग्रचण्डा तथा उग्रतारा स्वरूप देवी का ही स्वरूप है। तारा रूपी द्वितीय महाविद्या अपने साधकों पर अत्यधिक शीघ्रता से प्रसन्न होकर एक ही रात्रि में दर्शन भी दिया करती हैं। इनका भव्य श्रीविग्रह भारत में जालन्धर-पीठ के कांगड़ा नामक स्थान पर 'वज्रेश्वरी देवी' के नाम से शोभायमान है।

तारामंत्र

भगवती तारा के आजकल तीन मन्त्र विशेष प्रचलन में हैं जो कि निम्नलिखित हैं—

१. ह्रीं स्त्रीं हूं फट्।

२. श्रीं ह्रीं स्त्रीं हूं फट्।

३. ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट्॥

ऊपर तीन प्रकार के मन्त्र कहे गए हैं, साधक अपनी सुविधा के अनुसार इनमें से चाहे जिस मन्त्र के जप से उपासना कर सकता है।

ताराध्यान्

प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम्।
खर्व्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्म्मावृत्तां कटौ॥
नवयौवनसम्पन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम्।
चतुर्भुजां लोलजिह्वां महाभीमां वरप्रदाम्॥
खंगकर्तृसमायुक्तसव्येतरभुजद्वयाम्।
कपोलोत्पलसंयुक्तसव्यपाणियुगान्विताम्॥
पिंगाग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम्।
बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रय भूषिताम्॥
ज्वलच्चितामध्यगतां घोरदंष्ट्राकरालिनीम्।
स्वादेशस्मेरवदनां ह्यलंकारविभूषिताम्॥
विश्वव्यापकतोयान्तः श्वेतपद्मोपरिं स्थिताम्॥

तारा देवी एक पाँव आगे किये वीर पद से विराजित है। यह घोररूपिणी है व मुण्डमाला से विभूषित है, सर्वा है, लम्बोदरी है, भीमा है, व्याघ्रचर्म्म पहिनने वाली है, नवयुवती है, पंचमुद्रा विभूषित है, चतुर्भुजा है। इनकी चलायमान जिह्वा है, यह महाभीमा है और ये वरदायिनी भी है। इनके दक्षिण दोनों हाथों में खंग और कैंची तथा वाम दोनों हाथों में कपाल और उत्पल विद्यमान है। इनकी जटा पिंगलवर्ण की है, तीनों नेत्रों में तरुण सूर्य के समान रक्त वर्ण हैं। यह जलती हुई चिता में स्थित है, घोर दंष्ट्रा है, कराला है, स्वीय आवेश सी हास्यमुखी है। यह सब प्रकार के अलंकारों से अलंकृत है एवं यह विश्व व्यापिनी जल के भीतर श्वेत पद्म पर स्थित हैं।

तारा-स्तोत्र

तारा च तारिणी देवी नागमुण्डविभूषिता।
ललज्जिह्वा नीलवर्णा ब्रह्मरूपधरा तथा॥
नामाष्टक मिदं स्तोत्रं य पठेत् शृणुयादपि।
तस्य सर्व्वार्थसिद्धिः स्यात् सत्यं सत्यं महेश्वरि॥

तारा, तारिणी, नागमुण्डों से विभूषित, चलायमान जिह्वा वाली, नील वर्ण वाली, ब्रह्म रूपधारिणी है। यह नागों से अंचित कटी और नीलाम्बर धरा है। यह अष्टनामात्मक ताराष्टक स्तोत्र का पाठ अथवा श्रवण करने से सर्वार्थ सिद्धि प्राप्त होती है।

तारा-कवच

भैरव उवाच

दिव्यं हि कवचं देवि तारायाः सर्व्वकामदम्।
शृणुष्व परमं तत्तु तव स्नेहात् प्रकाशितम्।

भैरव ने कहा हे देवी! तारा देवी का दिव्य कवच सर्वकामप्रद और परम श्रेष्ठ है। तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण ही उसको कहता हूँ।

अक्षोभ्य ऋषिरित्यस्य छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम्।
तारा भगवती देवी मंत्रसिद्धौ प्रकीर्त्तितम्॥

इस कवच के ऋषि अक्षोभ्य, छंद, त्रिष्टुप्, देवता भगवती तारा और मन्त्र सिद्धि के निमित्त इसका विनियोग है।

ओंकारो मे शिरः पातु ब्रह्मरूपा महेश्वरी।
ह्रीङ्कारः पातु ललाटे बीजरूपा महेश्वरी॥
स्त्रीङ्कारः पातु वदने लज्जारूपा महेश्वरी।
हुङ्कार पातु हृदये तारिणी शक्तिरूपधृक्॥

ओ३म् ब्रह्म रूपा महेश्वरी मेरे मस्तक की, ह्रीं बीज रूपा महेश्वरी मेरे ललाट की, स्त्रीं लज्जा रूपा महेश्वरी मेरे मुख की और हुँ शक्ति रूप धारिणी तारिणी मेरे हृदय की रक्षा करें।

फट्कारः पातु सर्व्वांगे सर्वसिद्धि फलप्रदा।
खर्वा मां पातु देवेशी गण्डयुग्मे भयापहा॥
लम्बोदरी सदा स्कन्धयुग्मे पातु महेश्वरी।
व्याघ्र चर्मावृता कठिं पातु देवी शिवप्रिया॥

फट् सर्वसिद्धि फलप्रदा सर्वांगस्वरूपिणी भयनाशिनी खर्वादेवी मेरे दोनों कानों की, महेश्वरी लम्बोदरी देवी मेरे दोनों कंधे की और व्याघ्रचर्म्मावृता शिवप्रिया मेरी कमर की रक्षा करें।

पीनोन्नतस्तनी पातु पार्श्वयुग्मे महेश्वरी।
रक्तवर्त्तुलनेत्रा च कटिदेशे सदावतु॥
ललज्जिह्वा सदा पातु नाभौ मां भुवनेश्वरी।
करालास्या सदा पातु लिंग देवी हरप्रिया॥

पीनोन्नतस्तनी महेश्वरी मेरे दोनों पार्श्व की, रक्त गोल नेत्र वाली मेरी कटि की, ललजिह्वा भुवनेश्वरी मेरी नाभि की और कराल वदना हरप्रिया मेरे लिंग की सदा रक्षा करें।

विवादे कलहे चैव अग्नौ च रणमध्यतः।
सर्व्वदा पातु मां देवी झिण्टीरूपा वृकोदरी॥

झिण्टी रूपा वृकोदरी देवी विवाद एवं कलह में, अग्नि मध्य और रण में सदा मेरी रक्षा करें।

सर्व्वदा पातु मां देवी स्वर्गे मर्त्त्ये रसातले।
सर्व्वास्त्रभूषिता देवी सर्व्वदेवप्रपूजिता॥
क्रीं क्रीं हुं हुं फट् २ पाहि पाहि समन्ततः॥

सब देवताओं से पूजित सर्वास्त्र से विभूषित महादेवी मेरी स्वर्ग लोक, मर्त्य लोक और रसातल लोक में मेरी रक्षा करें। 'क्रीं क्रीं हुं हुं फट् फट्' बीज मन्त्र मेरी सब तरफ से रक्षा करें।

कराला घोरदशना भीमनेत्रा वृकोदरी।
अट्टहासा महाभागा विघूर्णितत्रिलोचना।
लम्बोदरी जगद्धात्री डाकिनी योगिनीयुता।
लज्जारूपा योनिरूपा विकटा देवपूजिता॥
पातु मां चण्डी मातंगी ह्युग्रचण्डा महेश्वरी॥

महाकराल घोर दाँतों वाली भयंकर नेत्र और भेड़िये के समान उदर वाली, जोर से हँसने वाली, महाभाग वाली, घूर्णित नेत्र वाली, लम्बायमान उदर वाली, जगत् की माता, डाकिनी योगिनियों से युक्त, लज्जारूप, योनिरूप, विकट तथा देवताओं से पूजित, उग्रचण्डा, महेश्वरी

मातंगी मेरी सर्वदा रक्षा करें।

जले स्थले चान्तरिक्षे तथा च शत्रुमध्यतः।
सर्व्वतः पातु मां देवी खड्गहस्ता जयप्रदा॥

खंग हाथ में लिये जय देने वाली देवी मेरी जल में, स्थल में, शून्य में; शत्रु मध्य में और अन्यान्य सब स्थानों में मेरी रक्षा करें।

कवचं प्रपठेद्यस्तु धारयेच्छृणुयादपि।
न विद्यते भयं तस्य त्रिषु लोकेषु पार्व्वति॥

जो साधक इस कवच का पाठ करते हैं या धारण करते हैं या सुनते हैं, हे पार्वती! तीनों लोकों में कहीं भी उनको भय नहीं सता सकता।

दश महाविद्या

तन्त्र सार

३. षोड्शी

३. श्री षोड्शी यन्त्र

३. षोड्शी (ललिता)

यह देवी कालिका की ही भाँति सिद्धियों की दात्री है और इनकी कृपा से ही साधकों को प्राय: सिद्धि मिला करती है। इन्हें श्री विद्या भी कहते हैं। मूलत: आदि-भवानी के अनन्त नाम तथा स्वरूप हैं, परन्तु इनका परम तेजस्वी रूप तथा अभिन्न परिचय केवल इतना है कि आद्य महादेवी अपने दो भेदों से प्रकट होती है जो कि श्यामवर्णा तथा रक्त वर्णा है। श्यामवर्णा होकर यही देवी काली तथा रक्त वर्णा होकर यही महाविद्या षोडशी कहलाती है।

एक समय की बात है कि अगस्त्य मुनि समस्त पीठों का दर्शन करने के हेतु निकले तो मध्य मार्ग में उन्होंने असंख्य जीवों को दु:ख से कातर होकर जीवन यापन करते हुये देखा। उनकी दु:खद स्थिति को देखकर उनके हृदय में करुणा का उदय हुआ। अपने अगले पड़ाव में काँचीपुर नामक स्थान पर उन्होंने महाविष्णु की तपस्या करके उन्हें प्रसन्न किया, जिस कारण वह प्रत्यक्ष हुये। उन्हें संतुष्ट एवं प्रसन्न जानकर मुनि ने कहा—"प्रभु! जगत में समस्त जीव दु:ख से व्याकुल होकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। कृपया उनके उद्धार का उपाय कीजिये।"

मुनि के शब्द सुनकर महाविष्णु ने उन्हें एक स्थूल प्रतिमा प्रदान की तथा उसके विषय में भी उन्हें बताया। इसका सविस्तार महात्म्य प्रकट करने के लिए उन्होंने अपने अंशभूत हयग्रीव को नियुक्त किया,

हे हरमहिले! जो पुरुष नग्न और मुक्तकेश होकर, पुष्ट और ऊँचे पीन कुम्भ स्तन वाली युवती नारी के साथ रति क्रीड़ा करते समय तुम्हारा मनन करते हुए तुम्हारे मन्त्र का जप करते रहते हैं, वह सरस्वती की कृपा से कवित्व की शक्तियुक्त होकर बहुत कालपर्यन्त पृथ्वी पर रहते हैं और सम्पूर्ण अभीष्ट उसको प्राप्त होता है।

समः सुस्थीभूतो जपति विपरीतो यदि सदा।
विचिन्त्य त्वां ध्यायन्नतिशयमहाकालसुरताम्॥
तदा तस्य क्षोणीतलविहरमाणस्य विदुषः।
कराम्भोजे वश्याः स्मरहरवधु सिद्धिनिवहाः॥

हे हरवल्लभे! तुम महाकाल के संग विहार सुख अनुभव करती हो, विपरीतरतासक्त होकर जो साधक स्थिर मन से तुम्हारा ध्यान करता है उसे सर्वशास्त्र में पारदर्शी शक्ति प्राप्त हो जाती है और समस्त सिद्धिसमूह उसके करतलों में रहता है।

प्रसूते संसारं जननि जगतीं पालयति च।
समस्तं क्षित्यादि प्रलयसमये संहरति च॥
अतस्त्वां धातापि त्रिभुवनपतिः श्रीपतिरपि।
महेशोऽपि प्रायः सकलमपि किं स्तौमि भवतीम्॥

हे जगन्मातः! तुम से ही चराचर जगत के सम्पूर्ण पदार्थ उत्पन्न हुए हैं, अतएव तुम्हीं सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हो। तुम्हीं सम्पूर्ण जगत को पालती हो, अतः तुम्हीं नारायण हो। महाप्रलय काल के समय यह जगत तुम से ही लय को प्राप्त होता है। अतः तुम्हीं महेश्वरी हो; किन्तु स्पष्ट यही समझा जाता है कि तुम्हारे पति होने के कारण ही महेश्वर प्रलय काल में लय को प्राप्त नहीं होते हैं।

अनेके सेवन्ते भवदधिकगीर्व्वाणनिवहान्।
विमूढास्ते मातः किमपि न हि जानन्ति परमम्॥

समाराध्यामाद्यां हरिहरविरिञ्चादिविबुधैः।
प्रसक्तोऽस्मि स्वैरं रतिरस महानन्दनिरताम्॥

हे जगदम्बे! तुम निरन्तर रति रस के आनन्द में निमग्न रहती हो। तुम्हीं सबकी आदिस्वरूपिणी हो। अनेक मूढ़ बुद्धि मनुष्य अन्यान्य देवताओं की आराधना करते हैं किन्तु वे अवश्य ही तुम्हारे उस अनिर्वचनीय परम तत्व को नहीं जानते। उनके उपास्य ब्रह्मा, विष्णु, शिव इत्यादि देवता लोग भी सदा तुम्हारी उपासना में ही लगे रहते हैं।

धरित्री कीलालं शुचिरपि समीरोऽपि गगनं।
त्वमेका कल्याणी गिरिशरमणी कालि सकलम्॥
स्तुतिः का ते मातस्तवकरुणया मामगतिकं।
प्रसन्ना त्वं भूया भवमनु न भूयान्मम जनुः॥

हे जननी! क्षिति, जल, तेज, वायु और आकाश यह पंचभूत भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हीं भगवान् महेश्वर की हृदय रंजिनी हो। तुम्हीं इस त्रिभुवन का मंगल करती हो। हे जननि! इस अवस्था में तुम्हारी फिर क्या स्तुति करूँ? क्योंकि किसी विलक्षण गुण का आरोप न करके वर्णन करने की स्तुति कहते हैं। हे माता! तुम में कौन सा गुण नहीं है, जो उसको जान करके तुम्हारा स्तव न करूँ? तुम स्वयं जगन्मयी माता हो। तुम्हारे विषय में जो कीर्तन है वह सब तुम्हारे स्वरूप वर्णन पर आश्रित है। हे कृपामयी! तुम दया प्रकाश करके इस निराश्रय सेवक के प्रति सन्तुष्ट प्रसन्न हो तो फिर इस सेवक को संसार में पुनः जन्म लेना नहीं पड़ेगा।

श्मशानस्थस्स्वस्थो गलितचिकुरो दिक्पटधरः।
सहस्त्रन्त्वर्काणां निजगलितवीर्य्येण कुसुमम्॥
जपंस्त्वत्प्रत्येकममुमपि तव ध्याननिरतो।
महाकालि स्वैरं स भवति धरित्रीपरिवृढः॥

हे महाकालिके! जो मनुष्य श्मशान भूमि में वस्त्रहीन और बाल

खोलकर यथाविधि आसन पर बैठकर स्थिर मन से तुम्हारे स्वरूप का मनन/ध्यान करते हुए तुम्हारे मन्त्र का जाप करता है, और अपने निकले वीर्य में सहस्त्र आक के फूल एक-एक करके तुम्हारी प्रसन्नता के निमित्त अर्पण करता है, वह सम्पूर्ण धरती का स्वामी होता है।

गृहे सम्मार्ज्जन्या परिगलितवीर्य्यं हि चिकुरं।
समूलं मध्याह्ने वितरति चितायां कुजदिने॥
समुच्चार्य्य प्रेम्णा जपमनु सकृत कालि सततं।
गजारूढो याति क्षितिपरिवृढः सत्कविवरः॥

हे देवी! जो मंगलवार के दिन मध्याह्न काल के समय कंघी द्वारा शृंगार किये गृहणी वाले कंघी के समूल केश लेकर पूर्व वर्णित तुम्हारे जिस किसी एक मन्त्र का जप करता हुआ तुम्हें भक्ति सहित वह सामग्री चिताग्नि में अर्पण करता है, वह धरा का अधीश्वर होकर निरन्तर हाथी पर चढ़कर विचरण करने में समर्थ होता है और व्यासादिक कवि कुल की प्रधानता को प्राप्त होता है।

सुपुष्पैराकीर्णं कुसुमधनुषो मंदिरमहो।
पुरो ध्यायन् यदि जपति भक्तस्स्तवममुम्॥
स गन्धर्व्वश्रेणींपतिरिव कवित्वामृतनदी।
नदीनः पर्य्यन्ते परमपदलीनः प्रभवति॥

हे जगन्मातः! साधक यदि स्वयं फलों से रंजित कामगृह को अभिमुख करके मन्त्रार्थ के सहित तुम्हारा ध्यान करता-करता पूर्व वर्णित किसी एक मन्त्र का जप करे, तो वह कवित्व रूपी नदी के सम्बन्ध में समुद्रस्वरूप हो जाता है और महेन्द्र की समानता प्राप्त कर लेता है। वह देहान्त के समय तुम्हारे चरण कमल में लीन होकर मुक्ति प्राप्त करता है तो यह विचित्र बात नहीं है।

त्रिपञ्चारे पीठे शवशिवहृदि स्मेरवदनां।
महाकालेनोच्चैर्मदनरसलावण्यनिरताम्॥

महासक्तो नक्तं स्वयमपि रतानन्दनिरतो।
जनो यो ध्यायेत्त्वामयि जननि स स्यात्स्मरहरः॥

हे जगन्मातः! तुम्हारे मुखमण्डल पर मृदु हास्य विराजित है। तुम सदा शिव के संग विहार अनुभव करती हो। जो साधक रात्रि में अपना विहार सुख अनुभव करता हुआ शव हृदय रूप आसन पर पाँच दशकोण युक्त तुम्हारे यंत्र में तुम्हारा पूर्वोक्त प्रकार से ध्यान करता है, यह शीघ्र शिवत्व का लाभ प्राप्त करता है।

सलोमास्थि स्वैरं पललमपि मार्ज्जारमसिते।
परञ्चौष्ट्रं मैषं नरमहिषयोश्छागमपि वा॥
बलिन्ते पूजायामपि वितरतां मर्त्यवसतां।
सतां सिद्धिः सर्व्वा प्रतिपदमपूर्व्वा प्रभवति॥

हे जननी! पृथ्वीवासी साधकगण यदि तुम्हारी पूजा में बिल्ली का माँस, ऊँट का माँस, नरमाँस, महिषमाँस अथवा छाग माँस रोमयुक्त और अस्थियों के सहित अर्पण करें, तो उनके चरण कमल में आश्चर्य भरे विषय सिद्ध होकर विराजित होते हैं।

वशी लक्षं मन्त्रं प्रजपति हविष्याशनरतो।
दिवा मातर्युष्मच्चरणयुगलध्याननिपुणः॥
परं नक्तं नग्नो निधुवनविनोदेन च मनुं।
जनो लक्षं स स्यात्स्मरहरसमान, क्षितितले॥

हे जगन्मातः! जो इन्द्रियों को अपने वशीभूत रखकर हविष्य भोजनपूर्वक प्रातःकाल से दिन के दूसरे प्रहर तक तुम्हारे दोनों चरणों में चित्त लगाकर जप करते हैं, और पशु भाव से एक लाख जप का पुरश्चरण करते हैं, अथवा जो साधक रात्रि काल में नग्न और रति में लीन होकर वीरसाधनानुसार एक लाख जप का पुरश्चरण करते हैं, यह दोनों प्रकार के साधक पृथ्वी तल में स्मरहर शिव के समान होते हैं।

इदं स्तोत्रं मातस्तवमनुसमुद्धारणजपः।
स्वरूपाख्यं पादाम्बुजयुगलपूजाविधियुतम्॥
निशार्द्धं वा पूजासमयमधि वा यस्तु पठति।
प्रलापे तस्यापि प्रसरति कवित्वामृतरसः॥

हे जननी! मेरे द्वारा वर्णित इस स्तव में तुम्हारे मन्त्र का उद्धार और तुम्हारे स्वरूप का वर्णन हुआ है। तुम्हारे चरण कमल की पूजा विधि का भी विधान इसमें व्यक्त किया है। जो साधक निशा द्विपहर काल में अथवा पूजा काल में इस स्तव को पढ़ता है, उसकी अनर्थक वाणी भी कवित्व सुधारस को प्रवाहित करती है।

कुरंगाक्षीवृन्दं तमनुसरति प्रेमतरलं।
वशस्तस्य क्षोणी पतिरपि कुबेरप्रतिनिधिः॥
रिपुः कारागारं कलयति च तत्केलिकलया।
चिरं जीवन्मुक्तः स भवति च भक्तः प्रतिजनुः॥

मृग के समान नेत्रों वाली नारियाँ इस स्तव को पढ़ने वाले साधक को प्रिय जानकर उसकी अनुगामिनी होती हैं। कुबेर के समान राजा भी उसके वश में रहते हैं। उस साधक के शत्रुगण कारागार में बन्द होते हैं। वह साधक प्रत्येक जन्म में जगदम्बिका का परम भक्त होता है। वह सर्वदा महाआनन्द से विहार करता हुआ अन्त में मोक्ष को प्राप्त करता है।

जगन्मंगल कालीकवचम्

भैरव्युवाच

कालीपूजा श्रुता नाथ भावाश्च विविधः प्रभो।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कवचं पूर्वसूचितम्॥
त्वमेव शरणं नाथ त्रापि मां दुःखसंकटात्।
त्वमेव स्त्रष्टा पाता च संहर्ता च त्वमेव हि॥

भैरवी ने पूछा—हे नाथ! हे प्रभो! मैंने काली पूजा और उसके विविध भाव सुने। अब पूर्व में व्यक्त किया कवच सुनने की इच्छा हुई है, उसका वर्णन करके मेरी दुःख संकट से रक्षा कीजिये। आप ही सृष्टि की रचना करते हो, आप ही रक्षा करते हो और आप ही संहार करते हो। हे नाथ! तुम्हीं मेरे आश्रय हो।

भैरव उवाच

रहस्यं शृणु वक्ष्यामि भैरवि प्राणवल्लभे।
श्रीजगन्मंगलं नाम कवचं मंत्रविग्रहम्।
पठित्वा धरयित्वा च त्रैलोक्यं मोहयेत् क्षणात्॥

भैरव ने कहा—हे प्राण वल्लभे! 'श्रीजगन्मंगलनामक' कवच कहता हूँ। सुनो! इसका पाठ करने अथवा इसे धारण करने से शीघ्र त्रिलोकी को मोहित किया जा सकता है।

नारायणोऽपि यद्धृत्वा नारी भूत्वा महेश्वरम्।
योगेशं क्षोभमनयद्यद्धृत्वा च रघूद्वहः।
वरवृप्तान् जघानैव रावणादिनिशाचरान्॥

नारायण ने इसको धारण करके नारी रूप से योगेश्वर शिव को मोहित किया था। श्रीराम ने इसी को धारण करके रावणादि राक्षसों का संहार किया था।

यस्य प्रसादादीशोऽहं त्रैलोक्यविजयी प्रभुः ।
धनाधिपः कुबेरोऽपि सुरेशोऽभूच्छत्रीपतिः ।
एवं हि सकला देवाःसर्व्वसिद्धीश्वराः प्रिये ॥

हे प्रिये! इसके ही प्रसाद से मैं त्रैलोक्यजयी हुआ हूँ। कुबेर इसके प्रसाद से धनाधिप हुए हैं। शचीपति सुरेश्वर और सम्पूर्ण देवतागण इसी के प्रभुत्व से सर्वसिद्धिश्वर हुए हैं।

श्रीजगन्मंगलस्यास्य कवचस्य ऋषिश्शिवः ।
छन्दोऽनुष्टुब्देवता च कालिका दक्षिणेरिता ॥
जगतां मोहने दुष्टानिग्रहे भुक्तिमुक्तिषु ।
योषिदाकर्षणे चैव विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥ *

इस कवच के ऋषि शिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता दक्षिण कालिका और मोहन दुष्ट निग्रह भुक्तिमुक्ति और योषिदाकर्षण के लिए विनियोग है ।

शिरो मे कालिका पातु क्रींकारैकाक्षरी परा।
क्रीं क्रीं क्रीं मे ललाटञ्च कालिका खंग धारिणी ॥
हुं हुं पातु नेत्रयुग्मं ह्रीं ह्रीं पातु श्रुती मम।
दक्षिणा कालिका पातु घ्राणयुग्मं महेश्वरी ॥
क्रीं क्रीं क्रीं रसनां पातु हुं हुं पातु कपोलकम्।
वदनं सकलं पातु ह्रीं ह्रीं स्वाहा स्वरूपिणी ॥

कालिका और क्रींकारा मेरे मस्तक की, क्रीं क्रीं क्रीं और खंगधारिणी कालिका मेरे ललाट की, हुं हुं दोनों नेत्रों की, ह्रीं ह्रीं मेरे कर्म की, दक्षिण कालिका दोनों नासिकाओं की, क्रीं क्रीं क्रीं मेरी जीभ की, हुं हुं कपोलों की और ह्रीं ह्रीं स्वाहा स्वरूपिणी महाकाली मेरी सम्पूर्ण देह की रक्षा करें।

* इसे विनियोग मन्त्र कहते हैं। प्रत्येक जपादि के अपने-अपने विनियोग होते हैं।

द्वाविंशत्यक्षरी स्कन्धौ महाविद्या सुखप्रदा।
खंगमुण्डधरा काली सर्व्वांगमभितोऽवतु॥
क्रीं हुं ह्रीं त्र्यक्षरी पातु चामुण्डा हृदयं मम।
हे हुं ओं ऐं स्तनद्वन्द्वं ह्रीं फट् स्वाहा ककुत्स्थलम्॥
अष्टाक्षरी महाविद्या भुजौ पातु सकर्त्तृका।
क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं करौ पातु षडक्षरी मम॥

बाईस अक्षर की गुह्य विद्या रूप सुखदायिनी महाविद्या मेरे दोनों स्कन्धों की, खंगमुण्डधारिणी काली मेरे सर्वांग की, क्रीं हुं ह्रीं चामुण्डा मेरे हृदय की, ऐं हुं ओं ऐं मेरे दोनों स्तनों की, ह्रीं फट् स्वाहा मेरे कन्धों की एवं अष्टाक्षरी महाविद्या मेरी दोनों भुजाओं की और क्रीं इत्यादि षडक्षरी विद्या मेरे दोनों हाथों की रक्षा करें।

क्रीं नाभिं मध्यदेशञ्च दक्षिणा कालिकाऽवतु।
क्रीं स्वाहा पातु पृष्ठन्तु कालिका सा दशाक्षरी॥
ह्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके हूं ह्रीं पातु कटीद्वयम्।
काली दशाक्षरी विद्या स्वाहा पातूरुयुग्मकम्।
ॐ ह्रां क्रीं मे स्वाहा पातु कालिका जानुनी मम॥
कालीहृन्नामविद्येयं चतुर्वर्गफलप्रदा।

क्रीं मेरी नाभि की, दक्षिण कालिका मेरे मध्य, क्रीं स्वाहा और दशाक्षरी विद्या मेरी पीठ की, ह्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके हुं ह्रीं मेरी कटि की, दशाक्षरीविद्या मेरे ऊरुओं की और ओ३म् ह्रीं क्रीं स्वाहा मेरी जानु की रक्षा करें। यह विद्या चतुर्वर्गफलदायिनी है।

क्रीं ह्रीं ह्रीं पातु गुल्फं दक्षिणे कालिकेऽवतु।
क्रीं हूँ ह्रीं स्वाहा पदं पातु चतुर्द्दशाक्षरी मम॥

क्रीं ह्रीं ह्रीं मेरे गुल्फ की, क्रीं हूँ ह्रीं स्वाहा और चतुर्दशाक्षरीविद्या मेरे शरीर की रक्षा करें।

खंगमुण्ड धरा काली वरदा भयवारिणी।
विद्याभिःसकलाभिः सा सर्व्वांगमभितोऽवतु॥

खंग मुण्डधरा वरदा भवहारिणी काली सब विद्याओं के सहित मेरे सर्वांग की रक्षा करें।

काली कपालिनी कुल्वा कुरुकुल्ला विरोधिनी।
विप्रचित्ता तथोग्रोग्रप्रभा दीप्ता घनत्विषः॥
नीला घना बालिका च माता मुद्रामिता च माम्।
एताः सर्व्वाः खंगधरा मुण्डमालाविभूषिताः॥
रक्षन्तु मां दिक्षु देवी ब्राह्मी नारायणी तथा।
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता॥
वाराही नारसिंही च सर्व्वाश्चामितभूषणाः।
रक्षन्तु स्वायुधैर्दिक्षु मां विदिक्षु यथा तथा॥

ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा, कुमारी, अपराजिता, वाराही, नृसिंही देवियों ने सर्व आभूषण धारण किए हुये हैं। यह सब माताएँ मेरे दिक् विदिक् की सर्वदा सर्वत्र रक्षा करें।

इत्येवं कथितं दिव्यं कवचं परमाद्भुतम्।
श्रीजगन्मंगलं नाम महामंत्रौघविग्रहम्॥
त्रैलोक्याकर्षणं ब्रह्मकवचं मन्मुखोदितम्।
गुरुपूजां विधायाथ गृह्णीयात् कवचं ततः।
कवचं त्रिःसकृद्वापि यावज्जीवञ्च वा पुनः॥

यह 'जगन्मंगलनामक' महामन्त्रस्वरूपी परम अद्भुत दिव्य कवच कहा गया है। इसके द्वारा त्रिभुवन आकर्षित होता है। गुरु की पूजा करने के पश्चात् इस कवच को ग्रहण करना चाहिये। इसका एक बार या तीन बार अथवा यावज्जीवन पाठ करें।

एतच्छतार्द्धमावृत्य त्रैलोक्यविजयो भवेत्।
त्रैलोक्यं क्षोभयत्येव कवचस्य प्रसादतः।
महाकविर्भवेन्मासात्सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्॥

इसकी पचास आवृत्ति करने से त्रैलोक्य विजयी हो सकता है। इस कवच के प्रसाद से त्रिभुवन क्षोभित होता है। इस कवच के प्रसाद से एक मास में सर्व्वसिद्धीश्वर हुआ जा सकता है।

पुष्पाञ्जलीन् कालिकायैमूलेनैव पठेत् सकृत्।
शतवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात्॥

मूल मन्त्र द्वारा कालिका को पुष्पाञ्जलि देकर इस कवच का एक पाठ करने से शतसहस्रवार्षिकी पूजा का फल प्राप्त हो जाता है।

भूर्ज्जे विलिखित्तञ्चैव स्वर्णस्थं धारयेद्यदि।
शिखायां दक्षिणे बाहौ कण्ठे वा धारयेद्यदि॥
त्रैलोक्यं मोहयेत् क्रोधात् त्रैलोक्यं चूर्णयेत्क्षणात्।
बह्वपत्या जीवत्सा भवत्येव न संशयः॥

भोजपत्र अथवा स्वर्णपत्र पर यह कवच लिखकर सिर व दक्षिण हस्त या कण्ठ में धारण करने से धारक त्रिभुवन मोहित या चूर्णकृत करने में समर्थ हो जाता है। नारी जाति बहुत सन्तान देने वाली और जीव वत्सा होती है। इसमें संदेह नहीं करना चाहिए।

न देयं परशिष्येभ्यो ह्यभक्तेभ्यो विशेषतः।
शिष्येभ्यो भक्तियुक्तेभ्यश्चान्यथा मृत्युमाप्नुयात्॥
स्पर्द्धामुद्धूय कमला वाग्देवी मंदिरे मुखे।
पौत्रान्तस्थैर्य्यमास्थाय निवसत्येव निश्चितम्॥

अभक्त अथवा परशिष्य को यह कवच प्रदान न करें। केवल भक्ति युक्त अपने शिष्य को ही दें। इसके अन्यथा करने से मृत्यु के मुख में गिरना होता है। इस कवच के प्रसाद से लक्ष्मी निश्चल होकर साधक के घर में और सरस्वती उसके मुख में वास करती है।

इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेत्कालिदक्षिणाम्।
शतलक्षं प्रजप्यापि तस्य विद्या न सिध्यति।
स शस्त्रघातमाप्नोति सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात्॥

इस कवच को न जानकर जो पुरुष काली मन्त्र का जाप करता है वह सौ लाख जपने पर भी उसकी सिद्धि को प्राप्त नहीं कर पाता है और वह पुरुष शीघ्र ही शस्त्राघात से प्राण त्याग्र करता है।

दश महाविद्या

तन्त्र सार

२. तारा

२. श्री तारा यन्त्र

२. तारा

जब काली ने नीला रूप ग्रहण किया तो वह तारा कहलाई। यह देवी तारक है अर्थात् मोक्ष देती हैं। अतः इन्हें तारा कहते हैं। उपासना करने पर यह देवी वाक्य सिद्धि प्रदान करती है, अतः इन्हें नील-सरस्वती भी कहते हैं। यह भी मान्यता है कि हयग्रीव का वध करने के लिये देवी ने नीला विग्रह ग्रहण किया था। यह शीघ्र प्रभावी हैं अतः इन्हें उग्रा भी कहते हैं। उग्र होने के कारण इन्हें उग्रतारा भी कहा जाता है। भयानक से भयानक संकटादि में भी अपने साधक को यह देवी सुरक्षित रखती है अतः इन्हें उग्रतारिणी भी कहते हैं। कालिका को भी उग्रतारा कहा जाता है। इनका उग्रचण्डा तथा उग्रतारा स्वरूप देवी का ही स्वरूप है। तारा रूपी द्वितीय महाविद्या अपने साधकों पर अत्यधिक शीघ्रता से प्रसन्न होकर एक ही रात्रि में दर्शन भी दिया करती हैं। इनका भव्य श्रीविग्रह भारत में जालन्धर-पीठ के कांगड़ा नामक स्थान पर 'वज्रेश्वरी देवी' के नाम से शोभायमान है।

तारामंत्र

भगवती तारा के आजकल तीन मन्त्र विशेष प्रचलन में हैं जो कि निम्नलिखित हैं—

१. ह्रीं स्त्रीं हूं फट्।

२. श्रीं ह्रीं स्त्रीं हूं फट्।

३. ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट् ॥

ऊपर तीन प्रकार के मन्त्र कहे गए हैं, साधक अपनी सुविधा के अनुसार इनमें से चाहे जिस मन्त्र के जप से उपासना कर सकता है।

ताराध्यान्

प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम्।
खर्व्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्म्मावृत्तां कटौ॥
नवयौवनसम्पन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम्।
चतुर्भुजां लोलजिह्वां महाभीमां वरप्रदाम्॥
खंगकर्तृसमायुक्तसव्येतरभुजद्वयाम् ।
कपोलोत्पलसंयुक्तसव्यपाणियुगान्विताम् ॥
पिंगाग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम्।
बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रय भूषिताम्॥
ज्वलच्चितामध्यगतां घोरदंष्ट्राकरालिनीम्।
स्वादेशस्मेरवदनां ह्यलंकारविभूषिताम्॥
विश्वव्यापकतोयान्तः श्वेतपद्मोपरिं स्थिताम्॥

तारा देवी एक पाँव आगे किये वीर पद से विराजित है। यह घोररूपिणी है व मुण्डमाला से विभूषित है, सर्वा है, लम्बोदरी है, भीमा है, व्याघ्रचर्म्म पहिनने वाली है, नवयुवती है, पंचमुद्रा विभूषित है, चतुर्भुजा है। इनकी चलायमान जिह्वा है, यह महाभीमा है और ये वरदायिनी भी है। इनके दक्षिण दोनों हाथों में खंग और कैंची तथा वाम दोनों हाथों में कपाल और उत्पल विद्यमान है। इनकी जटा पिंगलवर्ण की है, तीनों नेत्रों में तरुण सूर्य के समान रक्त वर्ण हैं। यह जलती हुई चिता में स्थित है, घोर दंष्ट्रा है, कराला है, स्वीय आवेश सी हास्यमुखी है। यह सब प्रकार के अलंकारों से अलंकृत है एवं यह विश्व व्यापिनी जल के भीतर श्वेत पद्म पर स्थित हैं।

तारा-स्तोत्र

तारा च तारिणी देवी नागमुण्डविभूषिता।
ललज्जिह्वा नीलवर्णा ब्रह्मरूपधरा तथा॥
नामाष्टक मिदं स्तोत्रं य पठेत् शृणुयादपि।
तस्य सर्व्वार्थसिद्धिः स्यात् सत्यं सत्यं महेश्वरि॥

तारा, तारिणी, नागमुण्डों से विभूषित, चलायमान जिह्वा वाली, नील वर्ण वाली, ब्रह्म रूपधारिणी है। यह नागों से अंचित कटी और नीलाम्बर धरा है। यह अष्टनामात्मक ताराष्टक स्तोत्र का पाठ अथवा श्रवण करने से सर्वार्थ सिद्धि प्राप्त होती है।

तारा-कवच

भैरव उवाच

दिव्यं हि कवचं देवि ताराया: सर्व्वकामदम्।
शृणुष्व परमं तत्तु तव स्नेहात् प्रकाशितम्।

भैरव ने कहा हे देवी! तारा देवी का दिव्य कवच सर्वकामप्रद और परम श्रेष्ठ है। तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण ही उसको कहता हूँ।

अक्षोभ्य ऋषिरित्यस्य छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम्।
तारा भगवती देवी मंत्रसिद्धौ प्रकीर्त्तितम्॥

इस कवच के ऋषि अक्षोभ्य, छंद, त्रिष्टुप्, देवता भगवती तारा और मन्त्र सिद्धि के निमित्त इसका विनियोग है।

ओंकारो मे शिर: पातु ब्रह्मरूपा महेश्वरी।
ह्रीङ्कार: पातु ललाटे बीजरूपा महेश्वरी॥
स्त्रीङ्कार: पातु वदने लज्जारूपा महेश्वरी।
हुङ्कार पातु हृदये तारिणी शक्तिरूपधृक्॥

ओ३म् ब्रह्म रूपा महेश्वरी मेरे मस्तक की, ह्रीं बीज रूपा महेश्वरी मेरे ललाट की, स्त्रीं लज्जा रूपा महेश्वरी मेरे मुख की और हुँ शक्ति रूप धारिणी तारिणी मेरे हृदय की रक्षा करें।

फट्कार: पातु सर्व्वांगे सर्वसिद्धि फलप्रदा।
खर्वा मां पातु देवेशी गण्डयुग्मे भयापहा॥
लम्बोदरी सदा स्कन्धयुग्मे पातु महेश्वरी।
व्याघ्र चर्मावृता कठिं पातु देवी शिवप्रिया॥

फट् सर्वसिद्धि फलप्रदा सर्वांगस्वरूपिणी भयनाशिनी खर्वादेवी मेरे दोनों कानों की, महेश्वरी लम्बोदरी देवी मेरे दोनों कंधे की और व्याघ्रचर्म्मावृता शिवप्रिया मेरी कमर की रक्षा करें।

पीनोन्नतस्तनी पातु पार्श्वयुग्मे महेश्वरी।
रक्तवर्त्तुलनेत्रा च कटिदेशे सदावतु॥
ललज्जिह्वा सदा पातु नाभौ मां भुवनेश्वरी।
करालास्या सदा पातु लिंग देवी हरप्रिया॥

पीनोन्नतस्तनी महेश्वरी मेरे दोनों पार्श्व की, रक्त गोल नेत्र वाली मेरी कटि की, ललजिह्वा भुवनेश्वरी मेरी नाभि की और कराल वदना हरप्रिया मेरे लिंग की सदा रक्षा करें।

विवादे कलहे चैव अग्नौ च रणमध्यतः।
सर्व्वदा पातु मां देवी झिण्टीरूपा वृकोदरी॥

झिण्टी रूपा वृकोदरी देवी विवाद एवं कलह में, अग्नि मध्य और रण में सदा मेरी रक्षा करें।

सर्व्वदा पातु मां देवी स्वर्गे मर्त्त्ये रसातले।
सर्व्वास्त्रभूषिता देवी सर्व्वदेवप्रपूजिता॥
क्रीं क्रीं हुं हुं फट् २ पाहि पाहि समन्ततः॥

सब देवताओं से पूजित सर्वास्त्र से विभूषित महादेवी मेरी स्वर्ग लोक, मर्त्य लोक और रसातल लोक में मेरी रक्षा करें। 'क्रीं क्रीं हुं हुं फट् फट्' बीज मन्त्र मेरी सब तरफ से रक्षा करें।

कराला घोरदशना भीमनेत्रा वृकोदरी।
अट्टहासा महाभागा विघूर्णितत्रिलोचना।
लम्बोदरी जगद्धात्री डाकिनी योगिनीयुता।
लज्जारूपा योनिरूपा विकटा देवपूजिता॥
पातु मां चण्डी मातंगी ह्युग्रचण्डा महेश्वरी॥

महाकराल घोर दाँतों वाली भयंकर नेत्र और भेड़िये के समान उदर वाली, जोर से हँसने वाली, महाभाग वाली, घूर्णित नेत्र वाली, लम्बायमान उदर वाली, जगत् की माता, डाकिनी योगिनियों से युक्त, लज्जारूप, योनिरूप, विकट तथा देवताओं से पूजित, उग्रचण्डा, महेश्वरी

मातंगी मेरी सर्वदा रक्षा करें।

जले स्थले चान्तरिक्षे तथा च शत्रुमध्यतः।
सर्व्वतः पातु मां देवी खड्गहस्ता जयप्रदा॥

खंग हाथ में लिये जय देने वाली देवी मेरी जल में, स्थल में, शून्य में; शत्रु मध्य में और अन्यान्य सब स्थानों में मेरी रक्षा करें।

कवचं प्रपठेद्यस्तु धारयेच्छृणुयादपि।
न विद्यते भयं तस्य त्रिषु लोकेषु पार्व्वति॥

जो साधक इस कवच का पाठ करते हैं या धारण करते हैं या सुनते हैं, हे पार्वती! तीनों लोकों में कहीं भी उनको भय नहीं सता सकता।

दश महाविद्या

तन्त्र सार

३. षोड्शी

३. श्री षोड्शी यन्त्र

३. षोड्शी (ललिता)

यह देवी कालिका की ही भाँति सिद्धियों की दात्री है और इनकी कृपा से ही साधकों को प्राय: सिद्धि मिला करती है। इन्हें श्री विद्या भी कहते हैं। मूलत: आदि-भवानी के अनन्त नाम तथा स्वरूप हैं, परन्तु इनका परम तेजस्वी रूप तथा अभिन्न परिचय केवल इतना है कि आद्य महादेवी अपने दो भेदों से प्रकट होती है जो कि श्यामवर्णा तथा रक्त वर्णा है। श्यामवर्णा होकर यही देवी काली तथा रक्त वर्णा होकर यही महाविद्या षोडशी कहलाती है।

एक समय की बात है कि अगस्त्य मुनि समस्त पीठों का दर्शन करने के हेतु निकले तो मध्य मार्ग में उन्होंने असंख्य जीवों को दुःख से कातर होकर जीवन यापन करते हुये देखा। उनकी दुःखद स्थिति को देखकर उनके हृदय में करुणा का उदय हुआ। अपने अगले पड़ाव में काँचीपुर नामक स्थान पर उन्होंने महाविष्णु की तपस्या करके उन्हें प्रसन्न किया, जिस कारण वह प्रत्यक्ष हुये। उन्हें संतुष्ट एवं प्रसन्न जानकर मुनि ने कहा—"प्रभु! जगत में समस्त जीव दुःख से व्याकुल होकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। कृपया उनके उद्धार का उपाय कीजिये।"

मुनि के शब्द सुनकर महाविष्णु ने उन्हें एक स्थूल प्रतिमा प्रदान की तथा उसके विषय में भी उन्हें बताया। इसका सविस्तार महात्म्य प्रकट करने के लिए उन्होंने अपने अंशभूत हयग्रीव को नियुक्त किया,

जिसने उन्हें भण्डासुर की कथा सुनाई, जिसने विशेष तपोबल से शिव के द्वारा वरदान प्राप्त किया था तत्पश्चात् वह एक सौ पाँच ब्रह्माण्डों का स्वामी बन गया था।

षोड्शी के प्रधान स्थान तीन हैं जो अपनी स्थिति के अनुसार एक तान्त्रिक त्रिकोण बनाते हैं। इनका स्थान कामगिरी, जालन्धर-पीठ तथा पूर्णागिरी है। इस भाँति से बनने वाले त्रिकोण के मध्य में उड्डीश है। हमारे देश में कामाक्षी (काँचीपुर), भ्रामरी (मलय), कुमारी (केरल), अम्बा (गुजरात), महालक्ष्मी (करवीर), कालिका (मालव), ललिता (प्रयाग), विंध्यवासिनी, विशालाक्षी (काशी), मंगल चण्डी (गया), सुन्दरी (बंगाल) तथा गुह्येश्वरी (नेपाल) नामक सिद्ध-स्थल (देवी के प्रमुख बारह श्री विग्रह) भक्तों की अभिलाषायें पूर्ण कर रहे हैं।

षोडषी मन्त्र

१. ऐं क्लीं सौः
२. ऐं सौः क्लीं
३. क्लीं ऐं सौः
४. क्लीं सौः ऐं

षोडषी (ललिता) ध्यानम्

विद्याक्ष माला सुकपाल मुद्रा राजत् करां,
कुन्द समान कान्तिम्।
मुक्ता फलालंकृति शोभितांगी,
बालां स्मरेद् वाङ्मय सिद्धि हेतो॥
भजेत् कल्प वृक्षाध उद्दीप्त रत्नासने,
सनिष्षण्णां मदाघूर्णिताक्षीम्।

करैंबीज पूरं कपालेषु चापं,
स पाशांकुशां रक्त वर्ण दधानाम्॥
व्याख्यान मुद्रामृत कुम्भ विद्यामक्ष,
स्रजं सन्दधतीं कराग्रैः।
चिद्रूपिणीं शारद चन्द्र कान्तिं,
बालां स्मेरन्नौक्तिक भूषितांगीम्॥

श्री षोडषी त्रिपुर-सुन्दरी प्रातः-स्मरण

'क'स्तूरिका-कृत-मनोज्ञ-ललाम-भास्वदर्द्धेन्दु-
मुग्ध - निटिलाञ्चल - नील - केशीम्।
प्रालम्बमान - नव - मौक्तिक - हार-भूषां,
प्रातः स्मरामि ललितां कमलायताक्षीम्॥१॥
'ए'णाङ्क - चूड़ - समुपार्जित - पुण्य - राशिं,
उत्तप्त-हेम-तनु-कान्ति-झरी-परीताम्।
एकाग्र-चित्त-मुनि-मानस-राज-हंसी,
प्रातः स्मरामि ललितां परमेश्वरीं ताम्॥२॥
'ई'षद् - विकासि - नयनान्त - निरीक्षणेन,
साम्राज्य-दान-चतुरां चतुराननेड्याम्।
ईषाङ्क-वास-रसिकां रस-सिद्धि-दात्रीं,
प्रातः स्मरामि मनसा ललिताधि-नाथां॥ ३॥
'ल'क्ष्मीश - पद्म - भवनादि - पदेश्चतुर्भिः,
संशोभिते च फलकेन सदा-शिवेन।
मञ्चे वितान-सहिते स-सुखं निषण्णां,
प्रातः स्मरामि मनसा ललिताधि-नाथां॥ ४॥

'ह्रीं'कार - मन्त्र - जप - तर्पण - होम - तुष्टां,
ह्रींकार-मन्त्र-जल-जात-सुराज-हंसीम्।
ह्रींकार-हेम-नव-पंजर-शारिकां तां,
प्रातः स्मरामि मनसा ललिताधि-नाथाम्॥ ५॥

'ह'ल्लोस-लास्य-मृदु-गीत-रसं पिबन्ती-
माकूणिताक्षमनवद्य-गुणाम्बु-राशिम्।
सुप्तोत्थितां श्रुति-मनोहर-कीर-वाग्भिः,
प्रातः स्मरामि मनसा ललिताधि-नाथां॥ ६॥

'स'च्चिन्मयीं सकल-लोक-हितैषिणीं च,
सम्पत्-करीं हय-मुखीं मुख-देवतेड्याम्।
सर्वानवद्य - सुकुमार - शरीर - रम्यां,
प्रातः स्मरामि मनसा ललिताधि-नाथाम्॥ ७॥

'क'न्याभिरर्ध - शशि - मुग्ध - किरीट-
भास्वच्चूडाभिरङ्क-गत-हृद्य-विपञ्चिकाभिः।
संस्तूय-मान-चरितां सरसीरुहाक्षीं,
प्रातः स्मरामि मनसा ललिताधि-नाथाम्॥ ८॥

'ह'त्वाऽसुरेन्द्रमति - मात्र - बलावलिप्त-
भण्डासुरं समर - चण्डमघोर - सैन्यम्।
संरक्षितार्त-जनतां तपनेन्दु-नेत्रां,
प्रातः स्मरामि मनसा ललिताधि-नाथाम्॥ ९॥

'ल'ज्जावनम्र - रमणीय - सुखेन्दु - बिम्बां,
लाक्षारुणाङ्घ्रि-सरसीरुह-शोभ-मानाम्।
रोलम्ब-जाल-सम-नील-सुकुन्तलाढ्यां,
प्रातः स्मरामि मनसा ललिताधि-नाथां॥ १०॥

'ह्रीं'कारिणीं हिम-महीधर-पुण्य-राशिं,
ह्रींकार-मन्त्र-महनीय-मनोज्ञ-रूपाम्।
ह्रींकार-गर्भमनु-साधक-सिद्धि-दात्रीं,
प्रातः स्मरामि मनसा ललिताधि-नाथाम्॥ ११॥

'स'ञ्जात - जन्म - मरणादि - भयेन देवीं,
सम्फुल्ल-निलयां शरदिन्दु-शुभ्राम्।
अर्द्धेन्दु-चूड-वनितामणिमादि-वन्द्यां,
प्रातः स्मरामि मनसा ललिताधि-नाथाम्॥ १२॥

'क'ल्याण-शैल-शिखरेषु विहार-शीलां,
कामेश्वराङ्क-निलयां कमनीय-रूपाम्।
काद्यर्ण-मन्त्र-महानीय-महानुभावां,
प्रातः स्मरामि मनसा ललिताधि-नाथाम्॥ १३॥

'ल'म्बोदरस्य जननीं तनु-रोम-राजिं,
बिम्बाधरां च शरदिन्दु-मुखीं मृडानीम्।
लावण्य-पूर्ण-जलधिं जल-जात-हस्तां,
प्रातः स्मरामि मनसा ललिताधि-नाथां॥ १४॥

'ह्रीं'कार-पूर्ण-निगमैः प्रतिपाद्य-मानां,
ह्रींकार-पद्म-निलयां हत-दानवेन्द्रम्।
ह्रींकार - गर्भमनुराज - निषेव्यमानां,
प्रातः स्मरामि मनसा ललिताधि-नाथाम्॥ १५॥

'श्री'चक्र-राज-निलयां श्रित-काम-धेनुं,
श्रीकाम-राज-जननीं शिव-भाग-धेयम्।
श्रीमद्-गुहस्य कुल-मङ्गल-देवतां तां,
प्रातः स्मरामि मनसा ललिताधि-नाथाम्॥ १६॥

श्रीललिता प्रातः-स्तोत्र-पञ्चकम्

प्रातः स्मरामि ललिता-वदनारविन्दं,
बिम्बाधरं पृथुल-मौक्तिक-शोभि-नासाम्।
आकर्ण-दीर्घ-नयनं मणि-कुण्डलाढ्यं,
मन्द-स्मितं मृग-मदोज्ज्वल-भाल-देशम्॥१॥

प्रातर्भजामि ललिता-भुज-कल्प-वल्लीं,
रक्तांगुलीय - लसदंगुलि - पल्लवाढ्याम्।
माणिक्य - हेम - वलयाङ्गद - शोभ - मानां,
पुण्ड्रेक्षु-चाप-कुसुमेषु सृणीर्दधानाम्॥२॥

प्रातर्नमामि ललिता-चरणारविन्दं,
भक्तेष्ट-दान-निरतं भव-सिन्धु-पोतम्।
पद्मासनादि - सुर - नायक - पूजनीयं,
पद्मांकुश - ध्वज - सुदर्शन - लाछनाढ्यम्॥३॥

प्रातः स्तुवे पर-शिवां ललितां भवानीं,
त्रय्यन्त-वेद्य-विभवां करुणानवद्याम्।
विश्वस्य सृष्टि-विलय-स्थिति-हेतु-भूतां,
विश्वेश्वरी निगम-वाङ्-मनसादि-दूराम्॥४॥

प्रातर्वदामि ललिते! तव पुण्य नाम,
कामेश्वरीति कमलेति महेश्वरीति।
श्रीशाम्भवीति जगतां जननी परेति,
वाग्-देवतेति वचसा त्रिपुरेश्वरीति॥५॥

फल-श्रुति

यच्छ्लोक-पञ्चकमिदं ललिताम्बिकायाः,
सौभाग्यदं सु-ललितं पठति प्रभाते।

तस्मै ददाति ललिता झटिति प्रसन्ना,
विद्यां श्रियं विमल-सौख्यमनन्त-कीर्तिम् ॥

श्रीत्रिपुर-सुन्दरी प्रातः-श्लोक-पंचकम्

प्रातर्नमामि जगतां जनन्याश्चरणाम्बुजं।
श्रीमत्-त्रिपुर-सुन्दर्या नमिता या हरादिभिः ॥ १ ॥

प्रातस्त्रिपुर-सुन्दर्या नमामि पद-पङ्कजं।
हरि-हरो विरञ्चिश्च सृष्ट्यादीन् कुरुते यथा ॥ २ ॥

प्रातस्त्रिपुर-सुन्दर्या नमामि चरणाम्बुजं।
यत्-पादमम्बु शिरसि भाति गङ्गा महेशितुः ॥ ३ ॥

प्रातः पाशांकुश-शरान् चाप-हस्तां नमाम्यहं।
उदयादित्य-सङ्काशां श्रीमत्-त्रिपुर-सुन्दरीम् ॥ ४ ॥

प्रातर्नमामि पादाब्जं ययेदं धार्यते जगत्।
तस्यास्त्रिपुर-सुन्दर्या यत्-प्रसादान्निवर्तते ॥ ५ ॥

फल-श्रुति

यः श्लोक-पञ्चकमिदं प्रातर्नित्यं पठेन्नरः।
तस्मै ददात्यात्म-पदं श्रीमत्-त्रिपुर-सुन्दरी ॥

षोडषी (ललिता) स्तोत्रम्

श्री भैरव उवाच

अधुना देव! बालाया स्तोत्रं वक्ष्यामि पार्वति!
पञ्चमाङ्गं रहस्यं मे श्रुत्वा गोप्यं प्रयत्नतः॥

विनियोगः

अस्य श्रीबाला-त्रिपुरसुन्दरी-स्तोत्र-मन्त्रस्य श्रीदक्षिणामूर्ति ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः श्रीबाला-त्रिपुरसुन्दरी देवता, ऐं बीजं, सौः शक्ति, क्लीं कीलकं, श्रीबाला-प्रीतये पाठे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यासः

श्रीदक्षिणामूर्ति-ऋषये नमः शिरसि। पंक्तिश्छन्दसे नमः मुखे। श्रीबाला-त्रिपुर-सुन्दरी-देवतायै नमः हृदि। ऐं बीजाय नमः गुह्ये। सौः शक्तये नमः नाभौ। क्लीं कीलकाय नमः पादयोः। श्रीबाला-प्रीतये पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

षडङ्ग-न्यासः	कर-न्यासः	अङ्ग-न्यासः
ऐं	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
क्लीं	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
सौः	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
ऐं	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुं
क्लीं	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
सौः	कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

ध्यानम्

अरुण-किरण-जालै रञ्जिताशावकाशा।
विधृत-जप-वटीका पुस्तकाभीति-हस्ता।

इतर-कर-वराढ्या फुल्ल-कह्लार-संस्था।
निवसतु हृदि बाला नित्य-कल्याण-रूपा॥

अर्थात् : भगवती श्रीबाला त्रिपुरसुन्दरी के शरीर की आभा अरुणोदय-काल के सूर्य-बिम्ब की जैसी रक्त-वर्ण की है। उस आभा की किरणों से सभी दिशायें एवं अन्तरिक्ष लाल रंग से रँगे हुये हैं। चार कर-कमलों में जप-माला, पुस्तक, अभय और वर-मुद्रायें हैं। पूर्ण खिले हुए रक्त-कमल के पुष्प पर विराजमाना हैं। ऐसी श्रीबाला जगत् का नित्य कल्याण करनेवाली हैं। वे मेरे हृदय में निवास करें।

स्तोत्र प्रारम्भ—

वाणीं जपेद् यस्त्रिपुरे! भवान्या बीजं निशीथे जड़-भाव-लीनः।
भवेत् स गीर्वाण-गुरोर्गरीयान् गिरीश-पत्नि! प्रभुतादि तस्य॥१॥

अर्थात् : हे त्रिपुरे! जो आप भगवती के वाणी-बीज 'ऐं' का जप महा-रात्रि में भाव-निमग्न होकर करता है, वह देव-गुरु वृहस्पति से भी बढ़कर विद्वान् होता है और हे शम्भु-पत्नि! सभी प्रकार का स्वामित्व उसे मिल जाता है।

कामेश्वरि! त्र्यक्षरी काम-राजं जपेद् दिनान्ते तव मन्त्र-राजम्।
रम्भाऽपि जृम्भारि-सभां विहाय भूमौ भजेत् तं कुल-दीक्षितं च॥२॥

अर्थात् : हे कामेश्वरि! जो आपके तीन अक्षरवाले काम-राज 'क्लीं' का जप दिन के समाप्त हो जाने पर (संध्या-काल) में करता है, उस कुल-मार्ग में दीक्षित साधक को वरण करने के लिए जृम्भासुर के विनाशक देवराज इन्द्र की भी सभा को त्याग कर रम्भा जैसी अप्सरा पृथ्वी पर चली आती है।

तार्तीयकं बीजमिदं जपेद् यस्त्रैलोक्य-मातस्त्रिपुरे! पुरस्तात्।
विधाय लीलां भुवने तथान्ते निरामयं ब्रह्म-पदं प्रयाति॥३॥

अर्थात् : हे त्रैलोक्य-माता त्रिपुरे! जो तार्तीय-बीज 'सौः' का

जप करता है, वह विश्व में अपने चरित से लोगों को चमत्कृत कर अन्त में आनन्दमय ब्रह्मपद को प्राप्त करता है।

धरा - सद्म - त्रिवृत्ताष्ट - पत्र - षट्कोण - नागरे!
विन्दु-पीठेऽर्चयेद् बालां योऽयौ प्रान्ते शिवो भवेत्॥ ४॥

अर्थात् : भू-पुर, त्रि-वृत्त, अष्ट-दल-पद्म, षट्-कोणात्मक नगरवाली हे जगदम्बिके! जो विन्दु-पीठ पर आप 'बाला' का अर्चन करता है, वह शिव-स्वरूप हो जाता है।

इति मन्त्र-मयं स्तवं पठेद् यस्त्रिपुराया निशि वा निशावसाने।
स भवेद् भुवि सार्वभौम-मौलिस्त्रिदिवे शक्र-समान-शौर्य-लक्ष्मी॥५॥

अर्थात् : भगवती त्रिपुरा के इस मन्त्र-मय स्तव का जो दिन के अन्त में या निशा-काल में पाठ करता है, वह पृथ्वी पर सार्वभौम महापुरुषों का नेता बनता है और स्वर्ग में इन्द्र के समान शौर्य-लक्ष्मी से युक्त होता है।

इतीदं देवि! बालाया स्तोत्रं मन्त्र-मयं परम्।
अदातव्यमभक्तेभ्यो गोपनीयं स्व-योनि-वत्॥ ६॥

अर्थात् : हे देवि! भगवती बाला का यह मन्त्र-मय स्तोत्र अति श्रेष्ठ है। भक्तिहीन व्यक्तियों को इसे नहीं बताना चाहिये और अत्यन्त गुप्त बनाए रहना चाहिए।

श्री षोडषी (त्रिपुर-सुन्दरी, ललिता) कवचम्

श्री भैरवी उवाच

देवदेव! महादेव! भक्तानां प्रीति-वर्द्धन!
सूचितं यत् त्वया देव्याः कवचं कथयस्व मे॥ १ ॥

श्री भैरव उवाच

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि कवचं देव-दुर्लभम्।
अप्रकाश्यं परं गुह्यं साधकाभीष्ट-सिद्धिदम्॥ २ ॥

विनियोगः

अस्य श्रीबाला-त्रिपुरसुन्दरी-कवचस्य श्रीदक्षिणामूर्तिः ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, श्रीबाला-त्रिपुर-सुन्दरी देवता, ऐं बीजं, सौः शक्तिः, क्लीं कीलकं, चतुर्वर्ग-साधने पाठे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यासः

श्रीदक्षिणामूर्ति-ऋषये नमः शिरसि। पंक्तिश्छन्दसे नमः मुखे, श्रीबाला-त्रिपुर-सुन्दरी-देवतायै नमो हृदि, ऐं बीजाय नमो गुह्ये, सौः शक्तये नमो नाभौ, क्लीं बीजाय नमः पादयोः, चतुर्वर्ग-साधने पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गेषु।

षडङ्ग-न्यासः	*कर-न्यासः*	*अङ्ग-न्यासः*
ऐं	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
क्लीं	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
सौः	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
ऐं	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुं
क्लीं	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
सौः	कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

ध्यानम्

मुक्ता-शेखर-कुण्डलाङ्गद-मणि-ग्रैवेय-हारोर्मिका,
विद्योतद्-वलयादि-कङ्कण-कटि-सूत्रां स्फुरन्-नूपुराम्।
माणिक्योदर-बन्ध-कम्बु-कबरीमिन्दोः कलां बिभ्रतीं,
पाशं चांकुश-पुस्तकाक्ष-वलयं दक्षोर्ध्व-बाह्वादितः॥

अर्थात् : भगवती बाला मोतियों से जड़े हुए चमकीले कुण्डल, अंगद, हार, वलय, कंगन, करधनी आदि आभूषण और पैर में गुंजायमान नूपुर धारण किए हैं। केश-पाश पर चन्द्रमा की कला शोभा पा रही है। दाएँ ऊर्ध्व हाथ से चार कर-कमलों में क्रमशः पाश, अंकुश, पुस्तक और अक्ष-माला लिए हैं।

कवच प्रारम्भ

ऐं वाग्भवं पातु शीर्षं क्लीं कामस्तु तथा हृदि।
सौः शक्ति-बीजं च पातु नाभौ गुह्ये च पादयोः॥ १॥

अर्थात् : वाग्भव-बीज 'ऐं' सिर की, काम-बीज 'क्लीं' हृदय की और शक्ति-बीज 'सौः' नाभि की, गुह्य तथा पैरों की रक्षा करें।

ऐं क्लीं सौः वदने पातु बाला मां सर्व-सिद्धये।
हसकलह्रीं सौः पातु भैरवी कण्ठ-देशतः॥ २॥

अर्थात् : 'ऐं क्लीं सौः' बाला मुख-मण्डल में सर्व-सिद्धियों के लिए मेरी रक्षा करें। 'हसकलह्रीं सौः' भैरवी कण्ठ-देश में रक्षा करें।

सुन्दरी नाभि-देशेऽव्याच्छीर्षिका सकला सदा।
भ्रू-नासयोरन्तराले महा-त्रिपुर-सुन्दरी॥ ३॥

अर्थात् : 'सुन्दरी' नाभि देश में, 'सकला' शीर्ष-भाग में और भौंहों तथा नाक के मध्य भाग में 'महा-त्रिपुरी-सुन्दरी' सदा रक्षा करें।

ललाटे सुभगा पातु भगा मां कण्ठ-देशतः।
भगा देवी तु हृदये उदरे भग-सर्पिणी॥ ४॥

अर्थात् : ललाट में 'सुभगा', कण्ठ-देश में 'भगा', हृदय में 'भगवती देवी' और उदय में 'भग-सर्पिणी' मेरी रक्षा करें।

भग-माला नाभि-देशे लिङ्गे पातु मनोभवा।
गुह्ये पातु महा-देवी राज-राजेश्वरी शिवा॥ ५॥

अर्थात् : नाभि-देश में 'भग-माला' और लिंग (योनि में 'मनोभवा' मेरी रक्षा करें। गुह्य में 'महा-देवी राज-राजेश्वरी शिवा' रक्षा करें।)

चैतन्य-रूपिणी पातु पादयोर्जगदम्बिका।
नारायणी सर्व-गात्रे सर्व-कार्ये शुभङ्करी॥ ६॥

अर्थात् : दोनों पैरों में 'चैतन्य-रूपिणी जगदम्बिका', सारे शरीर में 'नारायणी' और सभी कार्यों में 'शुभङ्करी' रक्षा करें।

ब्रह्माणी पातु मां पूर्वे दक्षिणे वैष्णवी तथा।
पश्चिमे पातु वाराही उत्तरे तु महेश्वरी॥ ७॥

अर्थात् : 'ब्रह्माणी' पूर्व दिशा में और 'वैष्णवी' दक्षिण दिशा में मेरी रक्षा करें। 'वाराही' पश्चिम दिशा में और 'महेश्वरी' उत्तर दिशा में रक्षा करें।

आग्नेय्यां पातु कौमारी महा-लक्ष्मीश्च नैर्ऋते।
वायव्यां पातु चामुण्डा इन्द्राणी पातु चेशके॥ ८॥

अर्थात् : 'कौमारी' आग्नेय कोण में और 'महा-लक्ष्मी' नैर्ऋत कोण में रक्षा करें। 'चामुण्डा' वायव्य कोण में और 'इन्द्राणी' ईशान कोण में रक्षा करें।

जले पातु महा-माया पृथिव्यां सर्व-मङ्गला।
आकाशे पातु वरदा सर्वतो भुवनेश्वरी॥ ९॥

अर्थात् : 'महा-माया' जल में और 'सर्व-मङ्गला' पृथ्वी पर रक्षा करें। 'वरदा' आकाश में और 'भुवनेश्वरी' सभी ओर रक्षा करें।

फल-श्रुति

इदं तु कवचं नाम देवानामपि दुर्लभम्।
पठेत् प्रातः समुत्थाय शुचिः प्रयत-मानसः॥ १०॥

अर्थात् : यह 'कवच' देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। प्रात:काल उठकर पवित्र हो एकाग्र-मन से इसका पाठ करना चाहिए।

नाधयो व्याधयस्तस्य न भयं च क्वचिद् भवेत्।
न च मारी-भयं तस्य पातकानां भयं तथा॥ ११॥

अर्थात् : पाठ करनेवाले को आधि-व्याधियाँ नहीं होतीं, न कहीं किसी प्रकार का भय होता है। उसे न महा-मारी का डर रहता है, न पापों का।

न दारिद्र्य-वशं गच्छेत् तिष्ठेन्मृत्यु-वशे न च।
गच्छेच्छिव-पुरे देवि! सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ १२॥

अर्थात् : वह दरिद्रता के वश में कभी नहीं होता और न मृत्यु के वशीभूत होता है। शिव के स्थान को ही वह प्राप्त होता है, यह मैं सर्वथा सत्य कहता हूँ।

इदं कवचमज्ञात्वा श्रीविद्यां यो जपेच्छिवे!
स नाप्नोति फलं तस्य प्राप्नुयाच्छस्त्र-घातनम्॥ १३॥

अर्थात् : इस 'कवच' को जाने बिना जो 'श्रीविद्या' के मन्त्र का जप करता है, उसे उस जप का फल नहीं मिलता, उल्टे वह किसी शस्त्र की चोट का भागी बन जाता है।

दश महाविद्या

तन्त्र सार

४. भुवनेश्वरी
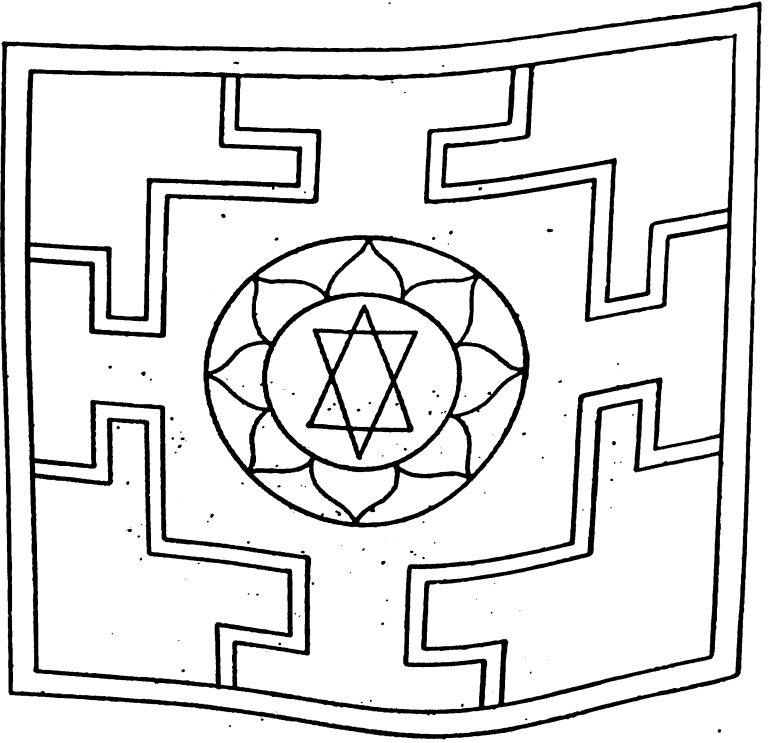
४. श्री भुवनेश्वरी यन्त्र

४. भुवनेश्वरी

जो मूल प्रकृति है उसे ही भुवनेश्वरी, काली तथा गोपाल सुन्दरी कहते हैं। काली चूँकि क्रिया-शक्ति का प्रतीक बनकर आदि में शून्य-रूपा होकर स्थित है अतः उनका श्री-स्वरूप अलग है और जब यह भुवनेश्वरी के रूप में प्रतिष्ठित होती है तब इनका श्री-स्वरूप अलग हो जाता है।

विश्वातीत परात्पर के नाम से जानी जाने वाली काल की महाशक्ति काली का अधिकार विश्व से पहले है। अतः इन्हें आद्या तथा विश्व का संहार करने वाली कालरात्रि भी कहते हैं। विश्वोत्पत्ति के उपक्रम में षोड्शी की सत्ता कार्यरत होती है एवं समस्त भुवनों का संचालन करती हुई वही मूल-महाशक्ति भुवनेश्वरी हो जाती है।

सृष्टि का सम्पूर्ण कार्य प्रबन्ध मूलतः तीन बातों पर ही आधारित है जिसे कि सृष्टि, संचालन तथा संहार कहते हैं। यह तीनों विशेषताएँ एक दूसरे की पूरक हैं। इनमें से यदि एक भी क्रियाहीन हो जाये तो विश्व में अनेकों अनियमिततायें पैदा हो जायेंगी।

संहार शून्यरूपा स्थिति है जो कि मृत्यु के बाद और जन्म से पूर्व हुआ करती है। यहाँ पर वही आदि अन्त रहित शक्ति कार्यरत होती है। मूलतः यह स्वीकार करने में अतिश्योक्ति न होगी कि शून्य से सृष्टि हुआ करती है। अतः जब कुछ नहीं था अर्थात् संहार था, यहाँ से सृष्टि होती है अर्थात् जीव जन्म लेता है। इस प्रकार जन्म के पश्चात् संचालन

अर्थात् जीवन यापन होता है। एक निश्चित अवधि के उपरान्त पुनः संहार होता है। यही चक्र सर्वदा चलायमान है।

भुवनेश्वरी मन्त्र

१. ह्रीं
२. ऐं ह्रीं
३. ऐं ह्रीं ऐं

ऊपर कहे गए तीन मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र के द्वारा साधक भगवती भुवनेश्वरी का पूजन भजन कर सकता है।

भुवनेश्वरी का ध्यान

उद्यदहर्द्युतिमिन्तुकिरीटां ।
तुंगकुचां नयनत्रययुक्ताम्॥
स्मेरमुखीं वरदांकुशपाशा-
भीतिकरां प्रभजेद् भुवनेशीम्॥

देवी के देह की कान्ति उदय होते हुए सूर्य के समान है। देवी के ललाट में अर्द्धचन्द्र, मस्तक पर मुकुट, दोनों स्तन ऊँचे, तीन नेत्र और चेहरे पर सदा हास्य तथा चारों हाथों में वर, अंकुश, पास और अभयमुद्रा विद्यमान है।

भुवनेश्वरी स्तोत्र

अथानन्दमयीं साक्षाच्छब्दब्रह्मस्वरूपिणीम्।
ईडे सकलसम्पत्त्यै जगत्कारणमम्बिकाम्॥

जो साक्षात् शब्द ब्रह्मस्वरूपिणी जगत्कारणी जगन्माता है। मैं सब सम्पत्ति लाभ होने के निमित्त उन्हीं आनन्दमयी भुवनेश्वरी की स्तुति करता हूँ।

आद्यामशेषजननीमरबिन्दयोनेर्विष्णोः
शिवस्य च वपुः प्रतिपादयित्रीम्।
सृष्टिस्थितिक्षयकरीं जगतां त्रयाणां।
स्तुत्वा गिरं विमलयाम्यहमम्बिके त्वाम्॥

हे मातः! तुम जगत् की आद्या हो, ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाली जगन्माता हो, ब्रह्मा, विष्णु, शिव को उत्पन्न करने वाली तुम ही हो। तुम ही सृष्टि की कर्त्ता, स्थिति तथा लय करने वाली हो। तुम्हारी स्तुति करके मैं अपनी वाणी को पवित्र करता हूँ।

पृथ्व्या जलेन शिखिना मरुताम्बरेण।
होत्रेन्दुना दिनकरेण च मूर्तिभाजः॥
देवस्य मन्मथरिपोरपि शक्तिमत्ता।
हेतुस्त्वमेव खलु पर्वतराजपुत्रि॥

हे पर्वतराज की पुत्री! जो पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, यजमान, सोम और सूर्य में विराजमान हैं, जिन्होंने कामदेव को ध्वंस किया था, उन महादेव की भी त्रैलोक्य संहार शक्ति तुम्हारे ही द्वारा सम्पन्न हुई है।

त्रिस्त्रोतसः सकललोकसमर्च्चिताया।
वैशिष्ट्यकारणमवैमि तदेव मातः॥
त्वत्पादपंकजपरागपवित्रितासु ।
शम्भोर्जटासु नियतं परिवर्तनं यत्॥

हे मातः! तुम्हारे चरण कमलों की रेणु से पवित्र हुई शिव के सिर की जटाजूट में तीन स्रोत वाली भागीरथी सदा शोभा पाती रहती हैं। इस कारण ही उनकी सब पूजा करते हैं। इसी कारण वह सुन्दरी प्रधानता को प्राप्त हुई हैं।

आनन्दयेत्कुमुदिनीमधिपः कलानां।
नान्यामिनः कमलिनीमथ नेतरां वा॥

एकस्य मोदनविधौ परमेकमीष्टे।
त्वन्तु प्रपञ्चमभिनन्दयसि स्वदृष्ट्या॥

हे जननी! जिस प्रकार चन्द्रमा केवल कुमुदिनी को ही आनन्दित करते हैं और अन्य को नहीं। सूर्य भी एकमात्र कमल का ही आनन्द बढ़ाते हैं और किसी को नहीं। इससे जाना जाता है कि जिस प्रकार एक-एक के आनन्द करने को एक-एक द्रव्य ही निर्दिष्ट हुआ है, इसी प्रकार सब जगत् को, एकमात्र तुम्हीं अपनी दृष्टि डालकर आनन्द देती हो।

आद्याप्यशेषजगतां नवयौवनासि।
शैलाधिराजतनयाप्यतिकोमलासि॥
त्रय्याः प्रसूरपि तया न समीक्षितासि।
ध्येयापि गौरि मनसो न पथि स्थितासि॥

हे जननी! सब जगत् की आदिभूत होकर भी तुम निरन्तर नवयुवती हो। तुम पर्वतराज पुत्री होकर भी अतिकोमला हो। तुम्हीं वेद प्रकट करने वाली हो। वेद तुम्हारा तत्त्व निरूपण करने में असमर्थ है। हे गौरी! यद्यपि तुम ध्यानगम्य हो, किन्तु इस प्रकार होकर भी मन में स्थित नहीं होती हो।

आसाद्य जन्म मनुजेषु चिराद्दुरापं।
तत्रापि पाटवमवाप्य निजेन्द्रियाणाम्॥
नाभ्यर्च्चयन्ति जगतां जनयित्रि ये त्वां।
निःश्रेणिकाग्रमधिरुह्य पुनः पतन्ति॥

हे जगन्मातः! जो दुर्लभ नरजन्म प्राप्त करके भी तुम्हारी पूजा नहीं करते हैं, वह मुक्ति की सीढ़ी पर चढ़कर भी पुनः गिरते हैं।

कर्पूरचूर्णहिमवारिविलोडितेन।
ये चन्दनेन कुसुमैश्च सुजातगन्धैः॥
आराधयन्ति हि भवानि समुत्सुकास्त्वां।
ते खल्वशेषभुवनादिभुवं प्रथन्ते॥

हे भवानी! जो कर्पूर के चूर्ण संयुक्त शीतल जल से घिसे हुए चन्दन और सुगन्धित पुष्पों के द्वारा उत्कंठित मन से तुम्हारी उपासना करते हैं, वह सब भुवनों के अधिपति होते हैं।

आविश्य मध्यपदवीं प्रथमे सरोजे।
सुप्ताहिराजसदृशी विरचय्य विश्वम्॥
विद्युल्लतावलयविभ्रममुद्वहन्ती ।
पद्मानि पञ्च विदलय्य समश्नुवाना॥

हे जननी! तुम मूलाधार पद्म में सोते हुए सर्पराज के समान विराजमान होकर विश्व की रचना करती हो। वहाँ से बिजली की रेखा के समूह की समान क्रमानुसार ऊर्ध्व में स्थित पंच पद्म को भेदकर सहस्त्र दल पद्म की कर्णिका के मध्य में स्थित परम शिव के सहित संगत होती हो! यह विद्युल्लता योग से जागती है।*

तन्निर्गतामृतरसैरभिषिच्च गात्रं।
मार्गेण तेन विलयं पुनरप्यवाप्ता॥
येषां हृदि स्फुरति जातु न ते भवेयु-
र्म्मातर्महेश्वरकुटुंबिनि गर्भभाजः॥

हे जननी हरगृहिणी! तुम सहस्त्र दल कमल से निर्गत हुए सुधारस से शरीर को अभिषिक्त करती हुई सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग में फिर प्राप्त होकर लय हो जाती हो, तुम जिसके हृदय कमल में उदित नहीं होती, वह बार-बार गर्भ में प्रवेश अर्थात् पुनः-पुनः जन्मने का दुःख पाता है।

आलम्बिकुन्तलभरामभिरामवक्त्रा-
मापीवरस्तनतटीं तनुवृत्तमध्याम्॥
चिन्ताक्षसूत्रकलशालिखिताढ्यहस्तां।
मातर्नमामि मनसा तव गौरि मूर्तिम्॥

---

* यहां पर कुल कुण्डलिनी तन्त्र के विषय पर स्पष्ट घोषणा की जा रही है। जरा गम्भीरता से मनन करें।

—यशपाल भारती

हे जननी! तुम्हारे केश लम्बे हैं। तुम्हारा मुख अत्यन्त मनोहर है। तुम ऊँचे कठोर स्तन वाली हो। तुम्हारी कमर पतली है और तुम्हारी चार भुजाओं में, ज्ञानमुद्रा, जपमाला, कलश और पुस्तक विद्यमान है। हे गौरी! तुम्हारी ऐसी मूर्ति को नमस्कार है।

आस्थाय योगमवजित्य च वैरिषट्क-
मावध्य चेन्द्रियगणं मनसि प्रसन्ने।
पाशांकुशाभयवराढ्यकरां सुवक्त्रा-
मालोकयन्ति भुवनेश्वरि योगिनस्त्वाम्॥

हे भुवनेश्वरी! योगिजन योग का आश्रय लेकर काम क्रोधादि शत्रुओं को जीतकर इन्द्रियों को रोककर प्रफुल्लित चित्त से पाशाँकुशाभय, वरयुक्त हाथ वाली, सुशोभनमुखी तुम्हारा दर्शन करते हैं।

उत्तप्तहाटकनिभा करिभिश्चतुर्भि-
रावर्तितामृतघटैरभिषिच्यमाना ॥
हस्तद्वयेन नलिने रुचिरे बहन्ती।
पद्मापि साभयकरा भवसि त्वमेव॥

हे जननी! जो तपे हुए काँच के समान वर्ण वाली है। चार हाथी जल पूरित घट से जिनका अभिषेक करते हैं। जो एक तरफ के दोनों हाथों में पद्म और अन्य दोनों हाथों में अभय तथा वर मुद्रा धारण करती है वह लक्ष्मी देविस्वरूपिणी तुम्हीं हो।

अष्टाभिरुग्रविविधायुधवाहिनीभि-
र्दोर्वल्लरीभिरधिरुह्य मृगाधिराजम्॥
दूर्व्वादलद्युतिरमर्त्यविपक्षपक्षान् ।
न्यक्कुर्व्वती त्वमसि देवि भवानि दुर्गे॥

हे देवी भवानी! जो सिंह के ऊपर चढ़कर नाना रूप वाले अस्त्र आठ हाथों से उठाती है। जो दूर्वादल के समान कान्ति वाली है। जिन्होंने देवताओं के शत्रुओं को परास्त किया है। वह दुर्गास्वरूपिणी माता तुम्हीं हो।

आविर्निदाघजलशीकरशोभिवक्त्रां ।
गुञ्जाफलेन परिकल्पितहारयष्टिम्॥
रत्नांशुकामसितकान्तिमलंकृतान्त्वा-
माद्यां पुलिन्दतरुणीमसकृत स्मरामि॥

पसीने की निकली हुई बूँदों से जिनका मुखमण्डल शोभा पाता है। जिन्होंने चौंटली के बीजों से बनी हार धारण की है। पत्रावली जिनके वसन हैं। उन्हीं कृष्णकान्ति वाली अनंग के वश में वर्त्तने वाली वा अनंग को वश में करने वाली आद्या पुलिन्दर मणी को बारम्बार स्मरण करता हूँ।

हंसैर्गतिक्वणितनूपुरदूरकृष्टै-
मूर्तैरिवाप्तवचचनैरनुगम्यमानौ॥
पद्माविवोर्ध्वमुखरूढसुजातनालौ।
श्रीकण्ठपत्नि शिरसैव दधे तवांघ्री॥

हे नीलकंठ की पत्नी! हंस जिस प्रकार नूपुर के शब्द द्वारा दूर से खिंचे आते हैं, इसी प्रकार वेद तुम्हारे चरण कमलों का अनुगमन करते हैं। किन्तु तुम्हारे चरण कमल श्रेष्ठ नीलकमल के समान विराजमान हैं। मैं तुम्हारे दोनों चरण मस्तक पर धारण करता हूँ।

द्वाभ्यां समीक्षितुमतृप्तिमितेन दृग्भ्या-
मुत्पाद्यता त्रिनयनं वृषकेतनेन॥
सान्द्रानुरागभवनेन निरीक्ष्यमाणे।
जंघे उभे अपि भवानि तवानतोऽस्मि॥

हे भवानी! वृषभध्वज श्रीमहादेव जी ने दोनों नेत्रों से तुम्हारे रूप का दर्शन करके तृप्त न होने से ही मानों तीसरे नेत्र को उन्नत कर अत्यन्त गाढ़ अनुराग सहित तुम्हारी जंघा का दर्शन किया है। अतएव मैं तुम्हारी उन दोनों जंघाओं को नमस्कार करता हूँ।

ऊरू स्मरामि जितहस्तिकरावलेपौ।
स्थौल्येन मार्द्दवतया परिभूतरम्भौ॥
श्रोणी भवस्य सहनौ परिकल्प्य दत्तौ।
स्तम्भाविवांगवयसा तव मध्यमेन॥

हे जननी! तुम्हारी ऊरु हाथियों की सूंड का गर्व नष्ट करती है। स्थूलता और कोमलता से केले के वृक्ष को परास्त करती है। तुम्हारा नितम्ब देखने से बोध होता है, मानो मध्य देश ने ही स्तम्भ स्वरूप में उसकी कल्पना करी है।

श्रोण्यौ स्तनौ च युगपत्प्रथयिष्यतोच्चै-
र्बाल्यात्परेण वयसा परिकृष्टसारः।
रोमावलीविलसितेन विभाव्य मूर्त्ति-
र्मध्यन्तव स्फुरति मे हृदयस्य मध्ये॥

हे देवी! तुम्हारा मध्य देश देखने में अनुमान होता है कि, मानो तुम्हारे नितम्ब और स्तनमण्डल दोनों ने उच्चता विस्तार के कारण यौवन द्वारा मध्य देश का सार ग्रहण किया है। इसी कारण तुम्हारा मध्य देश अत्यन्त क्षीण हो गया है। हे जननी! तुम्हारा यह मध्य देश मेरे हृदय में स्फुरित हो।

सख्यः स्मरस्य हरनेत्रहुताशभीरो-
र्लावण्यवारिभरितं नवयौवनेन।
आपाद्य दत्तमिव पल्वलमप्रधृष्यं।
नाभिं कदापि तव देवि न विस्मरेयम्॥

हे जननी! नवयुवती शिव की नेत्राग्नि से डरी हुई रति का लावण्य जलपूर्ण करके अल्पसरोवर के समान तुम्हारी नाभि बनाई गई है, तुम्हारी इस नाभि को मैं कभी नहीं भूलूँगा।

ईशोपगूहपिशुनं भसितं दधाने।
काश्मीरकर्द्दममनु स्तनपंकजे ते॥

स्नानोत्थितस्य करिणः क्षणलक्षफेनौ।
सिन्दूरितौ स्मरयतः समदस्य कुम्भो॥

हे जननी! तुम्हारे दोनों उन्नत कुचों ने भस्म धारण की है, उसके द्वारा हरका आलिंगन प्रतीत हुआ होता है। और यह दोनों स्तन पद्म मूल से अनुलिप्त होने के कारण स्नान से उठे मदयुक्त हाथी के क्षण मात्र को फेन से लक्षित गण्ड स्थल का स्मरण कराते हैं।

कण्ठातिरिक्तगलदुज्ज्वलकान्तिधारा।
शोभौ भुजौ निजरिपोर्मकरध्वजेन॥
कण्ठग्रहाय रचितौ किल दीर्घपाशौ।
मातर्म्मम स्मृतिपथं न विलंघयेताम्॥

तुम्हारे दोनों हाथ देखने से अनुमान होता है, मानो कामदेव ने अपने शत्रु हर का कंठग्रहण करने के लिए दीर्घ पाश बनाया है। हे मातः! तुम्हारे यह दोनों हाथ मैं कभी न भूलूँगा।

नात्यायतं रचितकम्बुविलास चौर्य्यं।
भूषाभरेण विविधेन विराजमानम्॥
कण्ठं मनोहरगुणं गिरिराजकन्ये।
सञ्चिन्त्य तृप्तिमुपयामि कदापि नाहम्॥

हे गिरिराजपुत्री! जो अत्यन्त दीर्घ नहीं है ऐसे अनेक प्रकार के अलंकृत मनोहरगुण तुम्हारे कंबुकंठ की मैं भावना करता हुआ कभी तृप्त न होऊँ।

अत्यायताक्षमभिजातललाटपट्टं ।
मन्दस्मितेन दरफुल्लकपोलरेखम्॥
बिम्बाधरं वदनमुन्नतदीर्घनासं।
यस्ते स्मरत्यसकृदम्ब स एव जातः॥

तुम्हारे मुख मण्डल में बहुत चौड़े नयन विराजमान हैं। भाल परम मनोहर दिखाई देता है। मृदुहास्य द्वारा कपोल प्रफुल्लित हुए हैं।

अधर बिम्बफल के समान शोभा पाते हैं। सुन्दर चेहरे पर उन्नत दीर्घ नासिका विराजमान है। जो पुरुष तुम्हारी ऐसी देह का स्मरण करते हैं। उनका ही जन्म सफल होता है।

आविस्तुषारकरलेखमनल्पगन्ध-
पुष्पोपरि भ्रमदलिव्रजनिर्व्विशेषम्॥
यश्चेतसा कलयन्ते तव केशपाशं।
तस्य स्वयं गलति देवि पुराणपाशः॥

हे देवी! तुम्हारे केश चन्द्रमा की चाँदनी से प्रकाशित होते हैं। वह स्वल्प गंधयुक्त फल के ऊपर भ्रमण करने वाले भौंरे के समान प्रतीत होते हैं। जो पुरुष तुम्हारे ऐसे केशपाश की भावना करते हैं। उनका सनातन संसारपाश कट जाता है।

श्रुतिसुरचितपाकं धीमतां स्तोत्रमेतत्।
पठति य इह मर्त्यो नित्यमार्द्रान्तरात्मा॥
स भवति पदमुच्चैः सम्पदां पादनम्रः।
क्षितिपमुकुटलक्ष्मीलक्षणानां चिराय॥

जो पुरुष बुद्धिमानों के श्रुति सुखदायक इस स्तोत्र को आर्द्र होकर प्रतिदिन पढ़ते हैं, वह सम्पूर्ण सम्पदाओं के स्वामी होते हैं, और राजा लोग सदा उनके चरण कमलों में झुका करते हैं।

पातक दहन भुवनेश्वरी-कवच

शिव उवाच

पातकं दहनं नाम कवचं सर्व्वकामकम्।
शृणु पार्व्वति वक्ष्यामि तव स्नेहात्प्रकाशितम्॥

श्री शिवजी बोले—हे पार्वती! 'पातकदहन नामक' भुवनेश्वरी का कवच कहता हूँ। सुनो। इसके द्वारा सब कामना पूर्ण होती हैं। तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण इसको व्यक्त करता हूँ।

पातकं दहनस्यास्य सदाशिव ऋषिःस्मृतः।
छन्दोऽनुष्टुब् देवता च भुवनेशी प्रकीर्त्तिता।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः॥

इस कवच के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता भुवनेश्वरी और धर्मार्थ काममोक्ष के निमित्त इसका विनियोग है।

ऐं बीजं मे शिरः पातु ह्रीं बीजं वदनं मम।
श्रीं बीजं कटिदेशन्तु सर्वांगं भुवनेश्वरी।
दिक्षु चैव विदिक्ष्वीयं भुवनेशी सदावतु॥

ऐं मेरे मस्तक की, ह्रीं मेरे मुख की, श्रीं मेरे कमर की और भुवनेश्वरी मेरे सर्वांग की रक्षा करे। क्या दिशा क्या विदिशा सर्वत्र भुवनेशी ही मेरी रक्षा करे।

अस्यापि पठनात्सद्यः कुबेरोऽपि धनेश्वरः।
तस्मात्सदा प्रयत्नेन पठेयुर्म्मानवा भुवि॥

इस कवच को पढ़ने के प्रसाद से कुबेर जी तत्काल धनाधिपति हैं। अतएव साधकों को इसका सदा पाठ करना चाहिए।

दश महाविद्या

तन्त्र सार

५. छिन्नमस्तिका

५. श्री छिन्नमस्तिका यन्त्र

५. छिन्नमस्तिका

एक बार आद्यभवानी अपनी सहचरियों जया तथा विजया के साथ नदी में स्नान करने के निमित्त गयी। उस स्थल पर स्नान करते हुये देवी के हृदय में सृष्टि निर्माण की प्रबल अभिलाषा जागृत हुई। इस इच्छा शक्ति की गरिमा के प्रभाव से देवी का रंग काला पड़ गया। वह स्वंयं में मगन थीं और समय भी अत्यधिक व्यतीत हो चुका था। दोनों सहचरियों ने उनसे बताया कि उन्हें भूख लगी हुई है।

देवी ने उन्हें प्रतीक्षा करने के लिये कहा। कुछ समयोपरांत उन्होंने पुनः उन्हें स्मरण कराया कि वह भूखी हैं। तब देवी ने अपने खड्ग से अपना शीश छिन्न कर दिया और उनके धड़ से रक्त की लहरें फूट पड़ीं। देवी ने अपना कटा हुआ शीश अपने हाथ पर रख लिया था। धड़ से प्रवाहित हो रहे रक्त को उनकी सहचारियाँ तथा स्वयं उनका मुख पीने लग गया।

भारत में जो 'चिन्तपुर्णी' देवी के नाम से हिमाचल (ऊना जिला) में जो भव्य-मन्दिर भक्तों के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है वह छिन्नमस्ता देवी का ही है।

छिन्नमस्ता मन्त्र

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वज्रवैरोचनीये हुं हुं फट् स्वाहा॥

छिन्नमस्ता ध्यान

प्रत्यालीढपदां सदैव दधतीं छिन्नं शिरःकर्त्तृकां।
दिग्वस्त्रां स्वकबन्धशोणितसुधाधारां पिबन्तीं मुदा॥
नगाबद्धशिरोमणिं, त्रियनयनां हृद्युत्पलालंकृतां।
रत्यांसक्तमनोभवोपरि दृढां ध्यायेज्जपासन्निभाम्॥
दक्षे चातिसिताविमुक्तचिकुरा कर्तृस्तथा खर्परं।
हस्ताभ्यां दधती रजोगुणभवो नाम्नापिसा वर्णिनी॥
देव्याश्छिन्नकबन्धतः पतदसृग्धारां पिबन्तीं मुदा।
नागाबद्धशिरोमणिर्म्मनुविदा ध्येय सदा सा सुरैः॥
वामे कृष्णतनूस्तथैव दधती खंगं तथा खर्परं।
प्रत्यालीढपदाकबन्धविगलद्रक्तं पिबन्ती मुदा॥
सैषा या प्रलये समस्तभुवनं भोक्तुं क्षमा तामसी।
शक्तिः सापि परात् परा भगवती नाम्ना परा डाकिनी॥

देवी प्रत्यालीढपदा हैं, अर्थात् युद्ध के लिये आगे चरण किये और एक पीछे करके वीर वेश करके खड़ी हैं। इन्होंने छिन्नशिर और खंग धारण किया हुआ है। देवी नग्न हैं और अपने छिन्न गले से निकली हुई शोणित धारा का पान करती हैं। उनके मस्तक में सर्पाबद्ध मणि है, तीन नेत्र हैं और वक्षःस्थल कमलों की माला से अलंकृत है। यह रति में आसक्त काम करके ऊपर दंडायमान है। इनकी देह की कान्ति जपा पुष्प के समान रक्त वर्णा है। देवी के दाहिने भाग में श्वेत वर्ण वाली, खुले केश, कैंची और खर्पर धारिणी एक देवी खड़ी है जिनका नाम 'वर्णिनी' है। यह वर्णिनी देवी के छिन्न गले से गिरती हुई रक्तधारा का पान करती है। इनके मस्तक में नागाबद्ध मणि है। बायीं तरफ खंग खर्पर धारिणी कृष्ण वर्णा दूसरी देवी खड़ी है। यह देवी के छिन्न गले से निकली हुई रुधिर धारा का पान करती हैं। इनका दाहिना पाँव आगे और बायाँ पाँव पीछे के भाग में स्थित है। यह प्रलय काल के समय सम्पूर्ण

जगत् का भक्षण करने में समर्थ हैं। इनका नाम 'डाकिनी' है।

छिन्नमस्ता स्तोत्र

नाभौ शुद्धसरोजरक्तविलसद्बन्धूकपुष्पारुणं।
भास्वद्भास्करमण्डलं तदुदरे तद्योनिचक्रम्महत्॥
तन्मध्ये विपरीत मैथुन रतप्रद्युम्नतत्कामिनी।
पृष्ठस्थां तरुणार्ककोटिविलसत्तेजः स्वरूपां शिवाम्॥

उनकी नाभि में खिला हुआ कमल है। उसके मध्य में बंदूक पुष्प के समान लाल वर्ण प्रदीप्त सूर्य मण्डल है, उस रवि मण्डल के मध्य में बड़ा योनि चक्र है। उसके मध्य में विपरीत मैथुन क्रीड़ा में आसक्त कामदेव और रति विराजमान हैं। इन कामदेव और रति की पीठ में प्रचण्ड अर्थात् छिन्नमस्ता स्थित हैं। यह क़रोड़ तरुण सूर्य के समान तेज शालिनी और मंगलमयी हैं।

वामे छिन्नशिरोधरां तदितरे पाणौ महत्कर्तृकां।
प्रत्यालीढपदां दिगन्तवसनामुन्मुक्तकेशव्रजाम्॥
छिन्नात्मीयशिरः समुल्लसद्सृग्धारां पिबन्तीं परां।
बालादित्यसमप्रकाशविलसन्नेत्रत्रयोद्भासिनीम्॥

इनके बायें हाथ में छिन्न मुण्ड है। दाहिने हाथ में भीषण कृपाण है। देवी एक चरण आगे एक चरण पीछे किये वीरवेष से स्थित हैं। दिशा के वस्त्रों को धारण किये हुए हैं। उनके केश खुले हुए हैं। यह अपने सिर को काटकर उसकी रुधिर धारा का पान कर रही हैं। इनके तीनों नेत्र प्रातःकालीन सूर्य के समान प्रकाशमान हैं।

वामादन्यत्र नालं बहु बहुलगलद्रक्तधाराभिरुच्चैः।
पायन्तीमस्थिभूषां करकमललसत्कर्तृकामुग्ररूपाम्॥
रक्तामारक्तकेशीमपगतवसनां वर्णिनीमात्मशक्तिं।
प्रत्यालीढोरुपादामरुणितनयनां योगिनीं योगनिद्राम्॥

इस देवी के दक्षिण और वाम भाग में निज शक्तिरूपा दो योगिनियाँ विराजमान हैं। इनके दक्षिण भाग स्थित योगिनी के हाथ में बड़ी कैंची है। यह योगिनी की उग्र मूर्ति है। यह रक्तवर्णा और रक्त केशी हैं। यह नग्न है और प्रत्यालीढपद से स्थित हैं। इनके नेत्र लाल हैं। इसको छिन्न मस्ता देवी अपनी देह से निकलती हुई रुधिर धारा का पान करा रही है।

दिग्वस्त्रां मुक्तकेशीं प्रलयघटघटाघोररूपां प्रचण्डां।
दंष्ट्रांदुष्प्रेक्ष्यवक्त्रोदरविवरलसल्लोलजिह्वाग्रभागाम्॥
विद्युल्लोलाक्षियुग्मां हृदयतटलसद्भोगिभीमां सुमूर्तिं।
सद्यश्छिन्नात्मकण्ठप्रगलितरुधिरैर्डाकिनीं वर्द्धयन्तीम्॥

जो योगिनी वाम भाग में स्थित है, वह नग्न है और उसके केश खुले हुए हैं। उसकी मूर्ति प्रलय काल के मेघ के समान भयंकर है। वह प्रचण्ड स्वरूपा है। इसका मुखमण्डल दाँतों से दुर्निरीक्ष हो रहा है। ऐसे मुख मण्डल के मध्य में चलायमान जीभ शोभित हो रही है। इसके तीनों नेत्र बिजली के समान चंचल हैं। इसके हृदय में सर्प विराजमान है। इसकी अत्यन्त भयानक मूर्ति है। छिन्नमस्ता देवी इस डाकिनी को अपने कंठ के रुधिर से तृप्त कर रही हैं।

ब्रह्मेशानाच्युताद्यैः शिरसि
विनिहितामंदपादारविंदामात्मज्ञैर्योगिमुख्यैः
सुनिपुणमनिशं चिन्तिताचिंत्यरूपाम् संसारे सारभूतां
त्रिभुवनजननीं छिन्न मस्तां प्रशस्तामिष्टां
तामिष्टदात्रीं कलिकलुषहरां चेतसा चिन्तयामि॥

ब्रह्मा, शिव और विष्णु आदि आत्मज्ञ योगीन्द्रगण इन छिन्नमस्ता देवी के पादारविन्द को मस्तक में धारण करते हैं। वह प्रतिदिन इनके अचिन्त्य रूप का मनन करते हैं। यह संसार का सारभूत हैं। यह तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाली हैं। यह मनोरथों को सिद्ध करने वाली हैं। इस कारण, कलियुग के पापों को हरने वाली इन देवी जी का मैं मन में

ध्यान करता हूँ।

उत्पत्तिस्थितिसंहृतीर्घटयितुं धत्ते त्रिरूपां तनुं।
त्रैगुण्याज्जगतो मदीयविकृतिर्ब्रह्माच्युतः शूलभृत्॥
तामाद्यां प्रकृतिं स्मरामि मनसा सर्व्वार्थसंसिद्धये।
यस्याः स्मेरपदारविन्दयुगले लाभं भजन्तेऽमराः॥

यह संसार की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करने के निमित्त ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन तीन मूर्तियों को धारण करती हैं। देवता इनके खिले कमल के समान दोनों चरणों का सदा भजन करते रहते हैं। सम्पूर्ण अर्थों की सिद्धि के निमित्त छिन्नमस्ता देवी का मन में ध्यान करता हूँ।

अपि पिशित-परस्त्री-योगपूजापरोऽहं।
बहुविधजडभावारम्भसम्भावितोऽहम्॥
पशुजनविरतोऽहं भैरवीसंस्थितोऽहं।
गुरुचरणपरोऽहं भैरवोऽहं शिवोऽहम्॥

मैं सदा मद्य माँस, परस्त्री आसक्त तथा योगपरायण हूँ। मैं जगदम्बा के चरण कमल में, संलिप्त हो बाह्य जगत् में रहकर जडभावापन्न हूँ। मैं पशुभावापन्न साधक के अंग से अलग हूँ। मैं सदा भैरवीगणों के मध्य में स्थित रहता हूँ। मैं गुरु के चरण चमलों का ध्यान करता रहता हूँ। मैं भैरव स्वरूप और मैं ही शिवस्वरूप हूँ।

इदं स्तोत्रं महापुण्यं ब्रह्मणा भाषितं पुरा।
सर्व्वसिद्धिप्रदं साक्षान्महापातकनाशनम्॥

यह महापुण्य का देने वाला स्तोत्र पहिले ब्रह्मा जी ने कहा है। यह स्तोत्र सम्पूर्ण सिद्धियों का देने वाला है। बड़े बड़े पातक और उपपातकों का यह नाश करने वाला है।

यः पठेत प्रातरुत्थाय देव्याः सन्निहितोऽपि वा।
तस्य सिद्धिर्भवेद्देवि वाञ्छितार्थप्रदायिनी॥

जो मनुष्य प्रात:काल के समय शय्या से उठकर वा छिन्नमस्ता देवी के पूजा काल में इस स्तोत्र का पाठ करता है, हे देवी! उनकी मनोकामना शीघ्र पूर्ण ही होती है।

धनं धान्यं सुतां जायां हयं हस्तिनमेव च।
वसुन्धरां महाविद्यामष्टसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम्॥

इस स्तोत्र के पाठ करने वाले मनुष्य को धन, धान्य, पुत्र, कलत्र, घोड़ा, हाथी और पृथ्वी प्राप्त होती है। वह अष्ट सिद्धि और नव सिद्धियों को निश्चय ही लाभ पाता है।

वैयाघ्राजिनरञ्जितस्वजघने रम्ये प्रलम्बोदरे।
खर्व्वेऽनिर्वचनीयपर्व्वसुभगे मुण्डावलीमण्डिते॥
कर्त्रीं कुन्दरुचिं विचित्ररचनां ज्ञानं दधाने पदे।
मातर्भक्तजनानुकम्पितमहामायेऽस्तु तुभ्यं नमः॥

हे मातः! तुमने व्याघ्रचर्म द्वारा अपनी जंघाओं को रंजित किया हुआ है। तुम अत्यन्त मनोहर आकृति वाली हो। तुम्हारा उदर अधिक लम्बायमान है। तुम छोटी आकृति वाली हो। तुम्हारा देह अनिर्वचनीय त्रिवली से शोभित है। तुम मुक्ता से विभूषित हो। तुमने हाथ में कुन्दवत् श्वेत वर्ण विचित्र कतरनी शस्त्र धारण कर रखा है। तुम भक्तों के ऊपर सदा दया करती हो। हे महामाये! तुमको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

छिन्नमस्ता कवच

हुं बीजात्मिका देवी मुण्डकर्तृधरापरा।
हृदयं पातु सा देवी वर्णिनी डाकिनीयुता॥

देवी डाकिनी से युक्त मुण्डकर्तृ को धारण करने वाली, हूँ बीजयुक्त महादेवी मेरे हृदय की रक्षा करें।

श्रीं ह्रीं हुं ऐं चैव देवी पूर्व्वस्यां पातु सर्वदा।
सर्व्वांगं मे सदा पातु छिन्नमस्ता महाबला॥

श्रीं ह्रीं हुं ऐं बीजात्मिका देवी मेरी पूर्व की और छिन्नमस्ता सदा मेरे सर्वांग की रक्षा करे।

वज्रवैरोचनीये हुं फट् बीजसमन्विता।
उत्तरस्यां तथाग्नौ च वारुणे नैर्ऋतेऽवतु॥

'वज्रवैरोचनीये हूं फट्' देवी उत्तर में, अग्नि, वरुण और नैऋत्य दिशा में रक्षा करे।

इन्द्राक्षी भैरवी चैवासितांगी च संहारिणी।
सर्व्वदा पातु मां देवी चान्यान्यासु हि दिक्षु वै॥

इद्राक्षी, भैरवी, असितांगी और संहारिणी देवी सर्वदा मेरी सब दिशाओं में मेरी कक्षा करे।

इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेच्छिन्नमस्तकाम्।
न तस्य फलसिद्धिः स्यात्कल्पकोटिशतैरपि॥

इसकवच को बिना जाने जो पुरुष छिन्नमस्ता का मंत्र जपता है वह सौ करोड़ कल्प में भी उसका फल प्राप्त नहीं कर पाता है।

दश महाविद्या

तन्त्र सार

६. त्रिपुर भैरवी
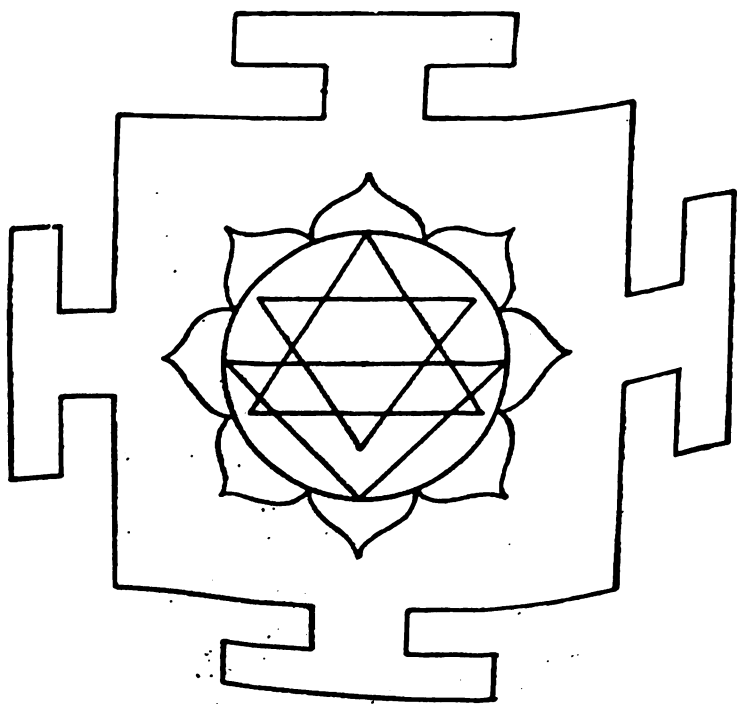
६. श्री त्रिपुर भैरवी यन्त्र

६. त्रिपुर भैरवी

भैरवी योगेश्वरी रूप उमा है। तथा जगत का मूल कारण है।

पूर्व पृष्ठों में वर्णित घटनानुसार जब शिवजी का मार्ग अवरुद्ध करके दशों दिशाओं में दश महादेवियाँ दर्शन देती हैं और शिवजी उनसे उनका परिचय पूछते हैं, तब पार्वती कहती हैं—

अहं तु भैरवी भीमां शम्भो मा त्वऽभयं कुरु॥

अर्थात् हे शिव! मैं स्वयं ही भैरवी रूप से आपको अभय दान देने के लिये प्रस्तुत हुई हूँ।

अतः कहा जा सकता है कि पार्वती ही भैरवी रूपा है।

श्री भैरवी का मुख्य उपयोग घोर कर्म में होता है। इनके ध्यान का उल्लेख सप्तशती के तीसरे अध्याय में महिषासुर वध के प्रसंग में हुआ है। इनका रंग लाल है, लाल वस्त्र पहनती हैं, गले में मुण्डमाला धारण करती हैं, स्तनों पर रक्त चन्दन का लेप करती हैं, जयमाला, पुस्तक तथा अभय और वर नामक मुद्रा धारण किए हुए हैं। कमलासन पर विराजमान हैं। मधुपान कर महिष का हृदय विदीर्ण करने के लिए इस घोर रूप का अवतरण हुआ है। इनका यन्त्र सुवर्ण में धारण करना चाहिए। संकटों से मुक्ति के लिए इनकी उपासना फलप्रदा है। जबलपुर के पास स्थित प्राचीन स्थान त्रिपुरी इस शक्ति का आराधनापीठ था।

भैरवी-मंत्र

हसैं हसकलरीं हसरौः। हसैं हसकलरीं हसरोः॥

भैरवी ध्यान

उद्यद्भानुसहस्त्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां।
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्।
हस्ताब्जैदधतीं त्रिनेत्रविलसद्रक्तारविन्दश्रियं।
देवीं बद्धहिमांशुरक्तमुकुटां वन्दे समन्दस्मिताम्॥

देवी के देह की कान्ति उदय हुए सहस्त्र सूर्य के समान है। रक्त वर्ण वस्त्र पहिने, गले में मुण्डमाला और दोनों स्तन रक्त से भीगे हुए हैं। इनके चारों हाथों में जपमाला, पुस्तक, अभय मुद्रा तथा वर मुद्रा और ललाट में चन्द्र विद्यमान है। इनके तीनों नेत्र लालकमल के समान हैं। मस्तक में रत्न जड़ित मुकुट और मुख पर मृदु हास्य विराजित है।

जप होम

दीक्षां प्राप्य जपेन्मंत्रं तत्त्वलक्षं जितेन्द्रियः।
पुष्पैर्भानुसहस्त्राणि जुहुयाद्ब्रह्मवृक्षजैः॥

उपरोक्त मन्त्र का दश लाख जप करने से पुरश्चरण पूर्ण होता है और ढाक के फूलों से बारह हजार होम करना उचित रहता है।

भैरवी-स्तोत्र

स्तुत्याऽनया त्वां त्रिपुरे स्तोष्येऽभीष्टफलाप्तये।
यया व्रजन्ति तां लक्ष्मीं मनुजाः सुरपूजिताम्॥

हे त्रिपुरे! मैं वांछित फल प्राप्त होने की आशा से तुम्हारी स्तुति करता हूँ। इस स्तुति के द्वारा मनुष्यगण देवताओं से पूजित धन देवी को प्राप्त करते हैं।

ब्रह्मादयः स्तुतिशतैरपि सूक्ष्मरूपां।
जानन्ति नैव जगदादिमनादिमूर्त्तिम्।

तस्माद्द्वयं कुचनतां नवकुंकुमाभां।
स्थूलां स्तुमः सकलवाङ्मयमातृभूताम्॥

हे जननी! तुम जगत् की आद्या हो। तुम्हारा आदि नहीं है। इसी कारण ब्रह्मादि देवतागण भी सैंकड़ों स्तुति करके सूक्ष्मरूपिणी तुमको समझ पाने में समर्थ नहीं हैं। उनकी ऐसी वाक्सम्पत्ति ही नहीं हो पाती है, कि जो तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ हों। इस कारण हम कुंकुम के समान कांतिवाली वाक्य रचना की जननी उन्नत पुष्टस्तन वाली तुम्हारा स्तुतिगान करते हैं।

सद्यः समुद्यतसहस्त्रदिवाकराभां।
विद्याक्षसूत्रवरदाभयचिह्नहस्ताम्।
नेत्रोत्पलैस्त्रिभिरलंकृतवक्त्रपद्मां।
त्वां हारभाररुचिरां त्रिपुरे भजामः॥

हे त्रिपुरे! तुम्हारे देह की कांति नये उदित होते हजार सूर्यों के समान उज्ज्वल है। तुम चारों हाथों में विद्या, अक्षयसूत्र और अभय धारण करती हो। तुम्हारे तीनों नेत्रकमलों से मुखकमल अलंकृत हुआ है। तुम्हारा गला हार से विराजमान है। ऐसी मैं तुम्हारी आराधना करता हूँ।

सिन्दूरपूररुचिरं कुचभारनम्रं।
जन्मान्तरेषु कृतपुण्यफलैकगम्यम्।
अन्योन्यभेदकलहाकुलमानसास्ते।
जानन्ति किं जडधियस्तव रूप मम्ब॥

हे जननी! तुम्हारा रूप सिन्दूर के समान लालवर्णा है। तुम्हारा देहांश भारी एवं उन्नत स्तनों के भार से झुक रहा है, जिन्होंने जन्म जन्मान्तर से बहुत पुण्य संचय किया है। वही उस पुण्य के प्रभाव से तुम्हारा ऐसा रूप देखने में समर्थ होगा। जो पुरुष निरंतर परस्पर कलह से कुंठित हैं, वह जड़मती पुरुष तुम्हारा ऐसा रूप किस प्रकार जान सकते हैं?

स्थूलां वदन्ति मुनयः श्रुतयो गृणन्ति।
सूक्ष्मां वदन्ति वचसामधिवासमन्ये।
त्वां मूलमाहुस्परे जगतां भवानि।
मन्यामहे वयमपारकृपाम्बुराशिम्॥

हे भवानी! मुनिगण तुमको स्थूल कहकर वर्णन करते हैं। श्रुतियें तुमको स्थूल कहकर स्तुति करती हैं। कोई जन तुमको वाक्य की अधिष्ठात्री देवी कहते हैं। अपरापर अनेक विद्वान पुरुष जगत् का मूल कारण कहते हैं। किन्तु मैं तुम्हें केवल मात्र दया की देवी करुणेश्वरी जानता हूँ।

चन्द्रावतंसकलितां शरदिन्दुशुभ्रां।
पञ्चाशदक्षरमयीं हृदि भावयन्ति।
त्वां पुस्तकं जपवटीममृताढ्यकुम्भं।
व्याख्याञ्च हस्तकमलैर्द्दधतीं त्रिनेत्राम्॥

हे जननी! तुम चंद्र से अलंकृत हो। तुम्हारे देह की कांति शरद के चंद्रमा के समान शुभ है। तुम्हीं पचास वर्णों वाली वर्णमाला हो। तुम्हारे चार हाथों में पुस्तक, जपमाला, सुधावर्ण कलश और व्याख्यानमुद्रा विद्यमान है। तुम्हीं त्रिनेत्रा हो। साधक इस प्रकार से तुम्हारा अपने हृदयकमल में ध्यान करते हैं।

शम्भुस्त्वमद्रितनया कलितार्द्धभागो।
विष्णुस्त्वमन्यकमलापरिबद्धदेहः।
पद्मोद्भवस्त्वमसि वागाधिवासभूमिः।
येषां क्रियाश्च जगति त्रिपुरे त्वमेव॥

हे जननी! तुम्हीं अर्द्धनारीश्वर शंभु रूप से शोभायमान हो। तुम्हीं कमलाश्लिष्टा विष्णु रूपिणी हो। तुम्हीं कमलयोनि ब्रह्मस्वरूपिणी हो। तुम्हीं वागाधिष्ठात्री—देवी हो। ब्रह्मादिक की सृष्टिक्रिया शक्ति भी केवल तुम्हीं हो।

आकुञ्च्य वायुमवजित्य च वैरिषट्क-
मालोक्य निश्चलधियो निजनासिकाग्रम्।
ध्यायन्ति मूर्ध्नि कलितेन्दुकलावतंसं।
तद्रूपमम्ब कृति तस्तरुणार्कमित्रम्॥

हे अम्बे! विद्वान् पुरुष वायु का निरोध करके काम क्रोधादि छ: शत्रुओं को जीतकर अपनी नासिका का अग्र भाग देखते हुए चन्द्रस्वरूपी नये उदय हुए सूर्य समान तुम्हारे रूप का सहस्र कमल में ध्यान करते हैं।

त्वं प्राप्य मन्मथरिपोर्वपुरर्द्धभागं।
सृष्टिं करोषि जगतामिति वेदवादः।
सत्यं तदद्रितनये जगदेकमात-
र्नोचेदशेषजगतः स्थितिरेव न स्यात्॥

हे पर्वतराजपुत्री! तुमने काम का दमन करने वाले महादेव के शरीर का अर्द्धांश अवलम्बन करके जगत् को उत्पन्न किया है। वेद में जो इस प्रकार वर्णन है, वह सत्य ही जान पड़ता है। हे विश्वजननी! यदि ऐसा न होता, तो कभी जगत् की स्थिति संभव नहीं होती।

पूजां विधाय कुसुमैः सुरपादपानां।
पीठे तवाम्ब कनकाचलगह्वरेषु।
गायन्ति सिद्धवनिताः सह किन्नरीभि-
रास्वादितामृतरसारुणपद्मनेत्राः ॥

हे जननी! जो कि सिद्धों की स्त्रियों के किन्नरीगणों के सहित एकत्र मिलकर आसव रस पान किया, इस कारण उनके नेत्रकमलों ने लोहित कांति धारण की है। वह पारिजातादि सुरतरु के फूलों से तुम्हारी पूजा करती हुई कैलाश पर्वत की कन्दराओं में तुम्हारे नाम का गायन करती हैं।

विद्युद्विलासवपुषं श्रियमुद्वहन्तीं।
यान्तीं स्ववासभवनाच्छिवराजधानीम्।

सौन्दर्यराशिकमलानि विकाशयन्तीं।
देवीं भजे हृदि परामृतसिक्तगात्राम्॥

हे देवी! जिन्होंने बिजली की रेखा के समान दीप्तमान् देह धारण किया है। जो अतिशय शोभा से युक्त है। जो अपने वासस्थान मूलाधार पद्म से सहस्र बार कमल में जाने के समय सुषुम्णा में स्थित पद्म समूह को विकसित करती है। जिनका शरीर परम अमृत से अभिषिक्त है। वह देवी तुम्हीं हो। मैं तुम्हारी आराधना करता हूँ।

आनन्दजन्मभवनं भवनं श्रुतीनां।
चैतन्यमात्रतनुमम्ब तवाश्रयामि।
ब्रह्मेशविष्णुभिरुपासितपादपद्मां।
सौभाग्यजन्मवसतीं त्रिपुरे यथावत्॥

हे त्रिपुरे! तुम्हारा देह आनन्द भवन है। तुम्हारे शरीर से ही श्रुतियाँ उत्पन्न हुई हैं। यह देह चैतन्यमय है। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तुम्हारे चरणकमलों की आराधना करते हैं। सौभाग्य तुम्हारे शरीर का आश्रय करके शोभा पाता है। मैं तुम्हारे ऐसे शरीर का आश्रय ग्रहण करता हूँ।

सर्व्वार्थभावि भुवनं सृजतीन्दुरूपा।
या तद्बिभर्त्ति पुनरर्कतनुः स्वशक्त्या।
ब्रह्मात्मिका हरति तत् सकलं युगान्ते।
तां शारदां मनसि जातु न विस्मरामि॥

हे जननी! जो चन्द्ररूप से भवनों की सृष्टि, सूर्यरूप से पालन और प्रलय काल में अग्नि रूप से उस सबको ध्वंस करती हैं, उस शारदा देवी को मैं कभी न भूल सकूँ।

नारायणीति नरकार्णवतारिणीति।
गौरीति खेदशमनीति सरस्वतीति।

ज्ञानप्रदेति नयनत्रयभूषितेति।
त्वामद्रिराजतनये विबुधा वदन्ति॥

हे पर्वतराजकन्ये! साधकगण तुम्हारी नारायणी, नरक-रूप सागर से तारने वाली देवी, गौरी, दु:खनाशिनी, सरस्वती, ज्ञानदाती और तीन नेत्रों से भूषिता इत्यादि रूप से आराधना करते हैं।

ये स्तुवन्ति जगन्माता श्लोकैर्द्वादशभिः क्रमात्।
त्वामनुप्राप्य वाक्सिद्धिं प्राप्नुयुस्ते परां गतिम्॥

हे जगन्मात:! जो पुरुष इन बारह श्लोकों से तुम्हारी स्तुति करते हैं, वह तुमको प्राप्त करके वाक्सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं, और देह के अंत में परमगति को प्राप्त होते हैं।

भैरवी-कवच

भैरवी कवचस्यास्य सदाशिव ऋषिः स्मृतः।
छन्दोऽनुष्टुब् देवता च भैरवी भयनाशिनी।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः॥

भैरवी कवच के ऋषि सदाशिव, छंद अनुष्टुप्, देवता भयनाशिनी भैरवी और धर्मार्थ काममोक्ष की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग कहा गया है।

हसैं मे शिरः पातु भैरवी भयनाशिनी।
हसकलरीं नेत्रञ्च हसरौश्च ललाटकम्।
कुमारी सर्व्वगात्रे च वाराही उत्तरे तथा।
पूर्व्वे च वैष्णवी देवी इन्द्राणी मम दक्षिणे।
दिग्विदिक्षु सर्व्वत्रैव भैरवी सर्व्वदावतु।
इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेद्देविभैरवीम्।
कल्पकोटिशतेनापि सिद्धिस्तस्य न जायते॥

हसैं मेरे मस्तक की, हसकलरीं मेरे नेत्र की, हसरौः मेरे ललाट की और कुमारी मेरे गात्र की रक्षा करें। वाराही उत्तर दिशा में, वैष्णवी पूर्व दिशा में, इन्द्राणी दक्षिण दिशा में और भैरवी दिशा विदिशा में सर्वत्र सदा मेरी रक्षा करें। इस कवच को बिना जाने जो कोई भैरवी मंत्र का जप करता है, सौ करोड़ कल्प में भी उसको सिद्धि प्राप्त नहीं होती।

दश महाविद्या

तन्त्र सार

७. धूमावती
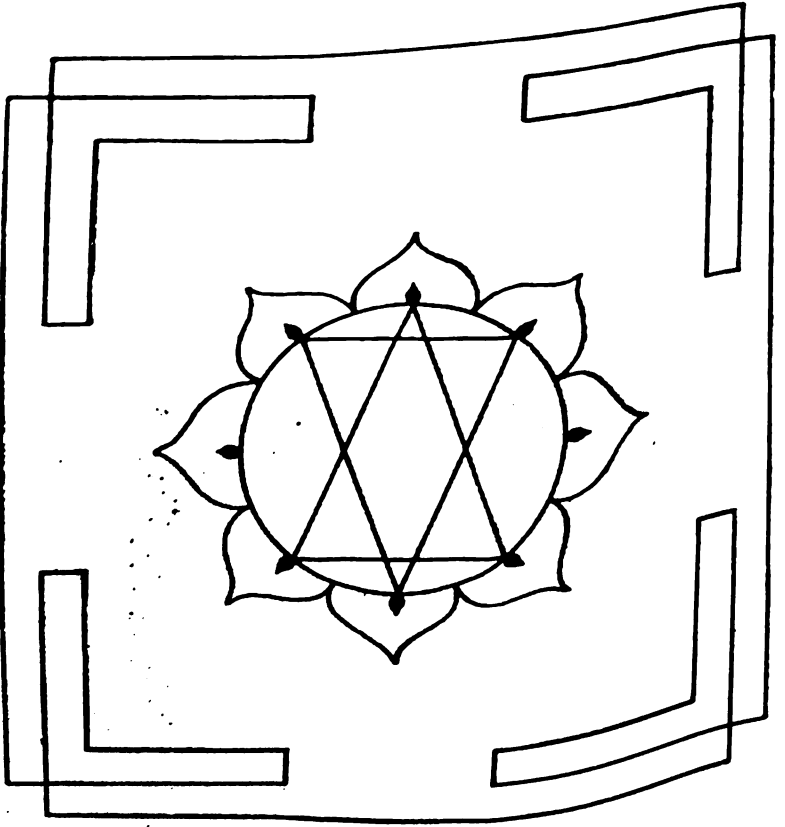
७. श्री धूमावती यन्त्र

७. धूमावती

यह अकेली ही दृष्टिगोचर होती हैं। इन्हें अलक्ष्मी कहते हैं क्योंकि यह धनहीन हैं पति रहित होने के कारण विधवा कही जाती हैं, परन्तु मार्कण्डेय पुराणानुसार ये विधवा नहीं बल्कि कुमारी हैं। एक बार युद्ध करते समय इन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जो भी मुझे युद्ध में परास्त कर देगा वही मेरा पति होगा और ऐसा अवसर कभी नहीं आया क्योंकि उन्हें कोई भी परास्त न कर सका था।

इनके विषय में एक और कथा पाई जाती है जिसके अनुसार कैलाश पर्वत पर पार्वती अपने स्वामी शिव के साथ बैठी हुई थीं। उन्हें वहाँ बैठे हुये अत्यधिक समय व्यतीत हो चुका था और पार्वती को क्षुधा लग रही थी। अतः उन्होंने शिवजी से कहा कि मुझे भूख लग रही है किन्तु शिवजी मौन ही रहे।

जब कई बार कहने पर भी कोई उत्तर प्राप्त न हुआ तो भगवती पार्वती ने शिवजी को उठाकर निगल लिया। ऐसा करने पर उनकी देह से धूम्र-राशि निकलने लगी, अतः उन्हें धूम्रा तथा धूमावती कहा जाता है।

जो साधक इन्हें मानते, पूजते और ध्याते हैं उनके ऊपर दुष्ट अभिचारादि का प्रभाव कभी नहीं हुआ करता है। हिमाचल-प्रदेश के कांगड़ा जिला में, इस देवी का सिद्धपीठ ''श्रीज्वालामुखी'' नामक स्थान पर है।

धूमावती मन्त्र

धूँ धूँ धूमावती स्वाहा।

धूमावती का ध्यान

विवर्णा चञ्चला रुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बरा।
विवर्णकुन्तला रूक्षा विधवा विरलद्विजा॥
काकध्वजरथारूढा विलम्बितपयोधरा।
सूर्यहस्तातिरूक्षाक्षी धृतहस्ता वरान्विता॥
प्रवृद्धघोणा तु भृशं कुटिला कुटिलेक्षणा।
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं भयदा कलहप्रिया॥

धूमावती देवी विवर्णा, चंचला, रुष्टा और दीर्घांगी हैं। इनके पहिनने के वस्त्र मलिन, केश विवर्ण और रुक्ष हैं। सम्पूर्ण दाँत छीदे-छीदे और दोनों स्तन लम्बे हैं। यह विधवा और काकध्वजा वाले रथ में विराजमान रहती हैं। देवी के दोनों नेत्र रुक्ष हैं। इनके एक हाथ में सूर्य और दूसरे हाथ में वरमुद्रा है। इनकी नासिका बड़ी और देह तथा नेत्र कुटिल हैं। यह भूख प्यास से आतुर हैं। इसके अतिरिक्त यह भयंकर मुख वाली और कलह में तत्पर है।

धूमावती स्तोत्र

भद्रकाली महाकाली डमरूवाद्यकारिणी।
स्फारितनयना चैव टकटंकितहासिनी॥
धूमावती जगत्कर्त्री शूर्पहस्ता तथैव च।
अष्टनामात्मकं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिसंयुक्तः॥
तस्य सर्व्वार्थसिद्धिः स्यात्सत्यं सत्यं हि पार्वति॥

भद्रकाली, महाकाली, डमरू बाजा बजाने वाली, खुले हुए नेत्र

वाली, टंक टंक करके हँसने वाली, धूमावती जगत्कर्त्री, छाज हाथ में लिये हुए है। यह धूमावती का अष्टनामात्मक स्तोत्र पढ़ने से सर्वार्थ की सिद्धि होती है।

धूमावती कवच

धूमावती मुखं पातु धूँ धूँ स्वाहा स्वरूपिणी।
ललाटे विजया पातु मालिनी नित्यसुंदरी॥

धूँ धूँ स्वाहा स्वरूपिणी धूमावती मेरे मुख की और नित्य सुन्दरी, मालिनी और विजया मेरे ललाट की रक्षा करें।

कल्याणी हृदयं पातु हसरीं नाभिदेशके।
सर्व्वांगं, पातु देवेसी निष्कला भगमालिनी॥

कल्याणी मेरे हृदय की, हसरीं मेरी नाभि की और निष्कला भगमालिनी देवी मेरे सर्वांग की रक्षा करें।

सुपुण्यं कवचं दिव्यं यः पठेद्भक्तिसंयुक्तः।
सौभाग्यमतुलं प्राप्त चांते देवीपुरं यथौ॥

इस पवित्र दिव्य कवच का भक्तिपूर्वक पाठ करने मात्र से इस लोक में अतुल सुख संभोग कर अन्त समय देवीपुर का लाभ प्राप्त हो जाता है।

दश महाविद्या

तन्त्र सार

८. बगलामुखी

८. श्री बगलामुखी यन्त्र

८. बगलामुखी

पौराणिक काल सतयुग में एक बार भीषण वायु-रूपी तूफान उत्पन्न हुआ। इसकी तीव्रता और इससे होने वाली हानियों की कल्पना करके भगवान् विष्णु को बड़ी भारी चिंता हुई और इस विषय में अन्य कोई उपाय न समझकर उन्होंने सौराष्ट्र नामक प्रान्त में हरिद्रा नाम वाले सरोवर के समीप आदि भवानी की प्रसन्नता हेतु तप किया।

परिणाम-स्वरूप और आवश्यकता के अनुसार देवी का बगलामुखी* के रूप में प्रादुर्भाव हुआ जिसने कि उस तूफान को शान्त कर दिया। यह देवी अपने साधकों को उनकी अभिलाषा के अनुसार सर्व कामनायें पूर्ण करती हैं।

यह शक्ति विष्णु के तेज से युक्त होने के कारण वैष्णवी है तथा मंगलवार युक्त चतुर्दशी की अर्धरात्रि में इनका आविर्भाव हुआ है। स्तम्भन विद्या के रूप में इनका प्रयोग किया जाता है। दैवी प्रकोप से बचने के लिए इनका उपयोग शान्तिकर्म, धनधान्य के लिए पौष्टिककर्म तथा शत्रुनिग्रह के लिए आभिचारिक कर्म के साथ होता है। यह भेद प्रधानता के अभिप्राय से ही है, अन्यथा यह विद्या का उपयोग भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति के लिए किया जा सकता है। इनकी उपासना से हर दुर्लभ वस्तु प्राप्त हो सकती है।

---

* इस महाविद्या पर मेरी अलग से एक पुस्तक उपलब्ध है—त्रैलोक्य स्तम्भनी बगलामुखी महासाधना।

बगला मन्त्र

ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्व्वदुष्टानां।
वाचं मुखं स्तम्भय जिह्वां कीलय।
कीलय बुद्धिं नाशाय ह्लीं ॐ स्वाहा॥

बगलामुखी ध्यान

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डयरत्नवेदी-
सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषितांगीं ।
देवीं स्मरामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्॥
जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयतीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि॥

सुधा सागर में मणिमय का मण्डप है। उसमें रत्न निर्मित वेदी के ऊपर सिंहासन है। बगलामुखी देवी उसी सिंहासन के ऊपर विराजमान हैं। यह पीतवर्ण और पीले वस्त्र पहिने हुए हैं। पीत वर्ण के ही इनके गहने और पीत वर्ण की ही माला से यह विभूषित हैं। इनके एक हाथ में मुद्गर और दूसरे हाथ में वैरी की जीभ है। यह बायें हाथ में शत्रु की जीभ का अग्र भाग धारण करके दाहिने हाथ के गदाघात से शत्रु को पीड़ित कर रही हैं। बगलामुखी देवी पीत वस्त्र से सज्जित दो भुजा वाली हैं।

बगलामुखी जप होम

साधक पीले वस्त्र पहिनकर हल्दी की गाँठों से बनी माला से नित्य एक लाख जप करें। पीले वर्ण के पुष्पों से ही दशांश होम करें।

बगला स्तोत्र

बगला सिद्धविद्या च दुष्टनिग्रहकारिणी।
स्तम्भिन्याकर्षिणी चैव तथोच्चाटनकारिणी॥
भैरवी भीमनयना महेशगृहिणी शुभा।
दशानामात्मकं स्तोत्रं पठेद्वा पाठयेद्यदि॥
स भवेत् मंत्रसिद्धश्च देवीपुत्र इव क्षितौ॥

बगला, सिद्ध विद्या, दुष्टों का निग्रह करने वाली, स्तम्भिनी, आकर्षिणी, उच्चाटन करने वाली, भैरवी, भयंकर नेत्रों वाली, महेश की पत्नी शुभा दशनामात्मक देवी स्तोत्र का जो साधक पाठ करता है या दूसरे से पाठ कराता है, वह मन्त्र सिद्ध होकर पार्वती के पुत्र के समान पृथ्वी पर विचरण करता है।

बगला कवच

ॐ ह्रीं मे हृदयं पातु पादौ श्रीबगलामुखी।
ललाटे सततं पातु दुष्टनिग्रहकारिणी॥

'ओ३म् ह्रीं' मेरे हृदय की श्रीबगलामुखी मेरे दोनों पैरों की और दुष्टनिग्रहकारिणी सदा मेरे ललाट की रक्षा करें।

रसनां पातु कौमारी भैरवी चक्षुषोर्म्मम।
कटौ पृष्टे महेशानी कर्णौ शंकरभामिनी॥

कौमारी मेरी जीभ की, भैरवी मेरे नेत्रों की महेशानी मेरी कमर की तथा पीठ की, शंकर की पत्नी मेरे कानों की रक्षा करें।

वर्ज्जितानि तु स्थानानि यानि च कवचेन हि।
तानि सर्व्वाणि मे देवी सततं पातु स्तम्भिनी॥

जो जो स्थान कवच में नहीं कहे गये, स्तम्भिनी देवी मेरे उन सब स्थानों की सदा रक्षा करें।

अज्ञात्वा कवचं देवि यो भजेद्बगलामुखीम्।
शस्त्राघातमवाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः॥

हे देवी! इस कवच को जाने बिना जो साधक बगलामुखी की उपासना करता है, उसकी शस्त्राघात से मृत्यु होती है। इसमें संशय नहीं करना।

दश महाविद्या

तन्त्र सार

९. मातंगी
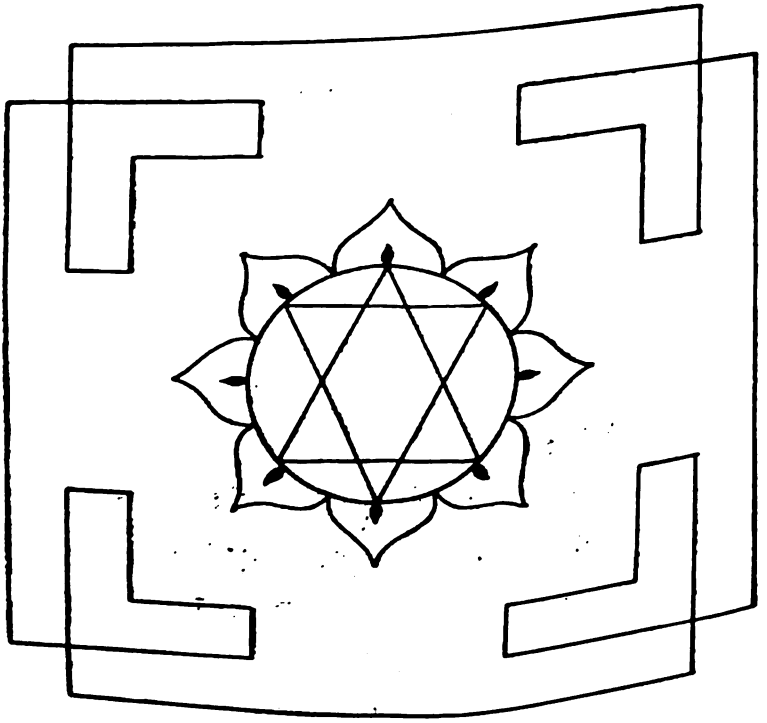
९. श्री मातंगी यन्त्र

९. मातंगी

एक बार मतंग नामक योगी ने सृष्टि के प्रत्येक जीव को अपने वशीभूत करने की अभिलाषा से प्रेरित होकर कदम्ब वन प्रान्त में एक विशेष तप किया, जिसके प्रभाव से आकर्षण हुआ। इसी शृंखला के अन्तर्गत देवी के नेत्रों से दिव्य तेज पुंज निकला जो कि एक स्त्री के रूप में परिवर्तित हो गया। इनका श्याम वर्ण था। इन्हें मातंगी कहते हैं। मान्यता है कि इनकी सेवा उपासना करने से निश्चित ही वाणी सिद्ध होती है।

मातंगी का एक नाम उच्छिष्ट चाण्डालिनी है। यह दक्षिण तथा पश्चिमाम्नाय की देवी है। राजमातंगी, सुमुखी, वश्यमातंगी, कर्णमातंगी इसके नामान्तर हैं। इनका रूप श्यामल है तथा इनकी ख्याति राजमातंगिनी के नाम से हुई है। ब्रह्मयामल इन्हें मतंग मुनि की कन्या बताता है। प्राणतोषिणी में यह विवरण इस प्रकार दिया है—

अथ मातंगिनीं वक्ष्ये क्रूरभूतभयंकरीम्।
पुरा कदम्बविपिने नानावृक्षसमाकुले॥
वश्यार्थं सर्वभूतानां मतंगो नामतो मुनिः।
शतवर्षसहस्राणि तपोऽतप्यत सन्ततम्॥
तत्र तेजः समुत्पन्नं सुन्दरीनेत्रतः शुभे।
तजोराशिरभूत्तत्र स्वयं श्रीकालिकाम्बिका॥
श्यामलं रूपमास्थाय राजमातंगिनी भवेत्॥

इसका तात्पर्य है कि कालिका, त्रिपुरा तथा मातंगी में कोई भेद नहीं। इस रूप की उपासना का लक्ष्य वाक्सिद्धि है। अतः वाणीदातृ के रूप में ही मातंगी की उपासना अभीष्ट है।

मातंगी मन्त्र

ॐ ह्रीं क्लीं हूं मातंग्यै फट् स्वाहा।

मातंगी ध्यान

श्यामांगीं शशिशेखरां त्रिनयनां रत्नसिंहासनस्थिताम्
वेदैः बाहुदण्डैरसिखेटकपाशांकुशधराम्॥

मातंगी देवी श्याम वर्ण, अर्द्ध चन्द्रधारिणी और त्रिनयन हैं, यह चार हाथ में खंग, खेटक पाश और अंकुश यह चारों अस्त्र धारण करके रत्न निर्मित सिंहासन पर विराजमान हैं।

मातंगी स्तोत्र

ईश्वर उवाच

आराध्य मातश्चरणाम्बुजे ते ब्रह्मादयो विश्रुतकीर्त्तिमापुः।
अन्ये परं वा विभवंमुनीन्द्राःपरां श्रियं भक्तिभरेण चान्ये॥

हे मातः! ब्रह्मादि देवताओं ने तुम्हारे चरण कमलों की आराधना करके कीर्ति लाभ प्राप्त किया है। दूसरे मुनीन्द्र भी परम विभव को प्राप्त हुए हैं। और अपर अनेकों ने भक्ति भाव से तुम्हारे चरण कमलों की आराधना करके अत्यन्त लाभ किया है।

नमामि देवीं नवचन्द्रमौलिं मातंगिनीं चन्द्रकलावतंसाम्।
आम्नायकृत्यप्रतिपादितार्थं प्रबोधयन्तीं हृदिसादरेण॥

जिनके माथे पर चन्द्रमा शोभा पाता है। जो वेद प्रतिपादित अर्थ को सर्वदा आदर से हृदय में प्रबोधित करती हैं। उन्हीं मातंगिनी देवी कों नमस्कार है।

विनम्रदेवासुरमौलिरत्नैर्विराजितं ते चरणारविन्दम्।
अकृत्रिमाणां वचसां विगुल्फं पादात्पदं सिञ्जितनूपुराभ्याम्।

कृतार्थयन्तीं पदवीं पदाभ्यामास्फालयन्तीं कुचवल्लकीं ताम्।
मातंगिनीं मद्धृदयेधिनोमि लीलंकृतां शुद्ध नितम्बबिम्बाम्॥

हे देवी! तुम्हारे चरण कमल सिर झुकाये देवासुरों के शिरों के रत्न द्वारा विराजित हैं। तुम अकृतिम वाक्य के अनुकूल हो। तुम्हीं शब्दायमान नपुरयुक्त अपने दोनों चरणों से इस पृथ्वी मण्डल को कृतार्थ करती हो। तुम्हीं सदा वीणा बजाती हो। तुम्हारे नितम्ब अत्यन्त शुद्ध हैं। मैं तुम्हारा हृदय में ध्यान करता हूँ।

तालीदलेनार्पितकर्णभूषां माध्वीमदाघूर्णितनेत्रपद्माम्।
घनस्तनीं शम्भुवधूं नमामि तडिल्लताकान्तवलक्षभूषाम्॥

तुमने ताल का करों में विभूषण धारण किया है, माध्वीक मद्यपान से तुम्हारे नेत्र कमल विघूर्णित होते हैं। तुम्हारे स्तन अत्यन्त घने हैं। तुम महादेव जी की वधू हो। तुम्हारी कान्ति विद्युत के समान मनोहर है। तुमको नमस्कार है।

चिरेण लक्षं प्रददातु राज्यं स्मरामि भक्त्या जगतामधीशे।
वलित्रयांगं तव मध्यमम्ब नीलोत्पलं सुश्रियमावहन्तीम्॥

हे मात: ! मैं भक्ति सहित तुम्हारा स्मरण करता हूँ। तुम बहुत काल का नष्ट हुआ राज्य प्रदान करती हो। तुम्हारी देह का मध्य भाग तीन वल्लियों से सज्जित है। तुमने नीलोत्पल के समान श्री धारण कर रखी है।

कान्त्या कटाक्षैर्जगतां त्रयाणां विमोहयतीं सकलान् सुरेशि।
कदम्बमालाञ्चितकेशपाशं मातंगकन्यां हृदि भावयामि॥

हे सुरेश्वरी! तुम कान्ति और कटाक्ष द्वारा तीनों लोकों को मोहित करती हो। तुम्हारे केश कदम्ब माला से बंधे हुए हैं। तुम्हीं मातंग कन्या हो। मैं तुम्हारी हृदय में भावना करता हूँ।

ध्यायेयमारक्तकपोलबिम्बं बिम्बाधरन्यस्तललाम वश्यम्।
अलोललीलाकमलायताक्षं मन्दस्मितं ते वदनं महेशि॥

हे देवी! तुम्हारे जिस मोहक मुख पर गालों के नीचे रक्त वर्ण के

होंठ परम सुन्दरता से सुसज्जित हैं, जिसमें चंचल अलकावली विराजमान है। आपके नेत्र बड़े हैं और आपके मुख पर मंद मंद हास्य शोभा पाता है। उसी मुख कमल का मैं ध्यान करता हूँ।

स्तुत्याऽनया शंकरधर्मपत्नी मातंगिनीं वागधिदेवतां ताम।
स्तुवन्ति ये भक्तियुता मनुष्याःपरां श्रियं नित्यमुपाश्रयन्ति॥

जो पुरुष भक्तिमान् होकर शंकर की धर्म पत्नी वाणी की अधिष्ठात्री मातंगिनी की इस स्तव द्वारा स्तुति करता है, वह सर्वदा परम श्री को प्राप्त करता है।

मातंगिनी कवच

शिरोमातंगिनी पातु भुवनेशी तु चक्षुषी।
तोतला कर्णयुगलं त्रिपुरा वदनं मम॥

मातंगी मेरे मस्तक की, भुवनेशी मेरे चक्षु की, तोतला मेरे कर्ण और त्रिपुरा मेरे मुख की रक्षा करें।

पातु कण्ठे महामाया हृदि माहेश्वरी तथा।
त्रिपुरा पार्श्वयोः पांतु गुह्ये कामेश्वरी मम॥

महामाया मेरे कण्ठ की, माहेश्वरी मेरे हृदय की, त्रिपुरा मेरे पार्श्व की और कामेश्वरी मेरे गुह्य की रक्षा करें।

ऊरुद्वये तथा चण्डी जंघायाञ्च रतिप्रिया।
महामाया पदे पायात्सर्वांगेषु कुलेश्वरी॥

चण्डी दोनों ऊरू की, रतिप्रिया मेरी जंघा की, महामाया मेरे पाँवों की और कुलेश्वरी सर्वांग की रक्षा करें।

य इदं धारयेन्नित्यं जायते सर्वदानवित्।
परमैश्वर्य्यमतुलं प्राप्नोति नात्र संशयः॥

जो पुरुष इस कवच को धारण करते हैं, वह सर्वदानज्ञ होते हैं और अतुल ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। इसमें सन्देह नहीं करना।

दश महाविद्या

तन्त्र सार

१०. कमला
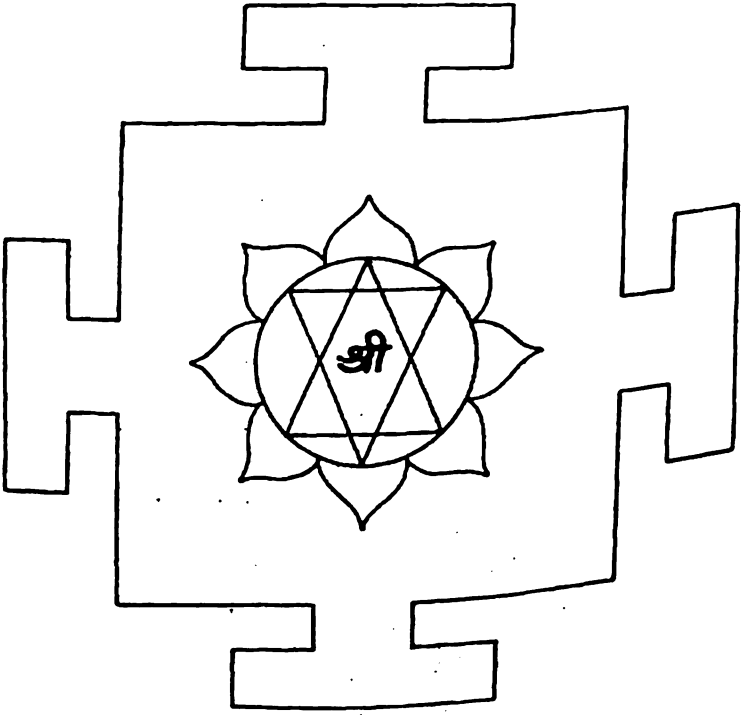
१०. श्री कमला यन्त्र

१०. कमला

दशमी महाविद्या कमला का लोक-प्रचलित नाम लक्ष्मी है। इन्हें नारायणी भी कहते हैं। धूमावती और कमला में प्रतिस्पर्धा है क्योंकि धूमावती ज्येष्ठा और कमला कनिष्ठा है। धूमावती को विधवा माना जाता है और अलक्ष्मी तथा भूखी माँ भी कहते हैं। धूमावती अवरोहिणी हैं तथा इन्हें आसुरी भी माना जाता है। इसके विपरीत कमला सधवा हैं और इन्हें लक्ष्मी कहते हैं। ये रोहिणी हैं तथा इन्हें दिव्या माना जाता है।

यूँ तो सभी महाविद्याएँ आदि अन्त से रहित हैं फिर भी इनके प्रादुर्भाव को विभिन्न प्राच्य विद्वानों ने अपने-अपने ज्ञानानुसार प्रकट किया है जिसके अनुसार समुद्र-मंथन के समय धन्वन्तरी जी के बाद उच्चैःश्रवा-घोड़ा फिर ऐरावत तत्पश्चात् लक्ष्मी जी का प्रादुर्भाव हुआ था।

श्रीमद्भागवत के आठवें स्कन्द के आठवें अध्याय में इनके उद्भव की कथा आई है। देवताओं तथा असुरों द्वारा किए गए मन्थन के फलस्वरूप समुद्र से जब इनका प्रादुर्भाव हुआ तो विष्णु ने इनका वरण किया। यह जगत के पोषण-पालन में सहायक है। देवता, प्रजापति और प्रजा सभी इनकी कृपा-दृष्टि से शील आदि उत्तम गुणों से सम्पन्न होकर सुखी हो जाते हैं। इनके हाथ में कमल है और दिग्गजों ने जल से भरे कलशों द्वारा इन्हें स्नान कराया है। श्री कमला के विपरीत असुर श्रीहीन हो जाते हैं, उन्हें इनकी ज्येष्ठा धूमावती नष्ट कर देती हैं।

कमला मन्त्र

१. श्रीं।

२. श्री कमलायै नमः ॥

भगवती कमला की पूजा जपादि करने के लिए उपरोक्त मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र का चुनाव करें।

कमला ध्यान

कान्त्या काञ्चनसन्निभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै-
र्हस्तोत्क्षिप्तहिरणमयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम्॥
विभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां।
क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बललितां वन्देऽरविन्दस्थिताम्॥

कमला देवी स्वर्ण के समान कान्तिमान् हैं। इनका हिमगिरि के समान विशाल आकार वाले चार हाथी सूंड उठाकर सुधा से पूर्ण सुवर्ण घड़ों से अभिषेक करते हैं। इनके चार हाथों में वर और अभयमुद्रा तथा दो कमल स्थित हैं। इनके भाल पर रत्न मुकुट हैं और यह कमल पर स्थित हैं।

कमला स्तोत्र

शंकर उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि लक्ष्मीस्तोत्रमनुत्तमम।
पठनात् श्रवणाद्यस्य नरो मोक्षमवाप्नुयात्॥

श्रीमहादेव जी बोले, हे पार्वती! अब अति उत्तम लक्ष्मी स्तोत्र कहता हूँ, इसको पढ़ने वा सुनने से मनुष्यों को मुक्ति प्राप्त होती है।

गुह्याद् गुह्यतरं पुण्यं सर्वदेवनमस्कृतम्।
सर्वमंत्रमयं साक्षाच्छृणु पर्वतनन्दिनि॥

हे पर्वतनन्दिनि! यह स्तोत्र गुह्य से गुह्यतर सर्वदेवों से नमस्कृत और सर्वमन्त्रंमयी है। श्रवण करो।

अनन्तरूपिणी लक्ष्मीरपारगुणसागरी।*
अणिमादिसिद्धिदात्री शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे देवी लक्ष्मी! तुम अनन्तरूपिणी और गुणों का सागर हो। तुम्हीं प्रसन्न होकर अणिमादि सिद्धि का प्रसाद देती हो। तुमको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

आपदुद्धारिणी त्वं हि आद्या शक्तिः शुभा परा।
आद्या आनन्ददात्री च शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे देवी! तुम्हीं प्रसन्न होकर अपने भक्तों का विपद से उद्धार करती हो। तुम्हीं कल्याणी हो। तुम्हीं आद्याशक्ति हो। तुम्हीं सबकी आदि हो एवं तुम्हीं आनन्ददायिनी हो। तुमको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

इन्दुमुखी इष्टदात्री इष्टमंत्रस्वरूपिणी।
इच्छामयी जगन्मातः शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे देवी जगन्माता लक्ष्मी! तुम्हीं अभीष्ट प्रदान करती हो। तुम्हारा मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रकाशमान है। तुम्हीं इष्ट मन्त्र स्वरूपिणी और इच्छामयी हो। तुमको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

उमा उमापतेस्त्वन्तु ह्यत्कण्ठाकुलनाशिनी।
उर्व्वीश्वरी जगन्मातर्लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे देवी लक्ष्मी! तुम्हीं उमापति की उमा हो। तुम्हीं पृथ्वी की ईश्वरी हो। तुमको नमस्कार करता हूँ।

ऐरावतपतिपूज्या ऐश्वर्याणां प्रदायिनी।
औदार्य्यगुणसम्पन्ना लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे देवी! तुम्हीं ऐरावतपति देवराज इन्द्र की वन्दनीय हो। तुम्हीं प्रसन्न होने पर सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान कर सकती हो। तुम्हीं उदार गुणों से विभूषित हो। तुमको नमस्कार करता हूँ।

---

* यह अकार से प्रारम्भ होकर क्षकार पर समाप्त होने वाला विशेष प्रभावशाली स्तोत्र है। —यशपाल

कृष्णवक्ष:स्थिता देवि कलिकल्मषनाशिनी।
कृष्णचित्तहरा कर्त्री शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे दवी! तुम सदा श्रीकृष्ण के वक्ष:स्थल में विराजमान रहती हो। तुम्हारे बिना और कोई भी कलिकल्मषध्वंस करने में समर्थ नहीं है। तुमने ही श्रीकृष्ण का चित्त हरण किया है। अत: केवल सर्वकारिणी तुम्हीं हो। तुमको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

खञ्जनाक्षी खंजनासा देवि खेदविनाशिनी।
खंजरीटगतिश्चैव शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे देवी! तुम खंजन के नेत्र के समान सुनयना हो। तुम्हारी नासिका गरुड़ की नासिका के समान मनोहर है। तुम आश्रितों के क्लेश का विनाश करती हो। तुम्हारी गति खंजरीट के समान है। मैं तुमको सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

गोविन्दवल्लभा देवी गन्धर्व्वकुलयावनी।
गोलोकवासिनी मातः शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे जननी! तुम्हीं बैकुण्ठपति गोविन्द की प्रियतमा हो। तुम्हारे अनुग्रह से ही गन्धर्वकुल पवित्र हुआ है। तुम्हीं सर्वदा गोलोकधाम में विहार करती हो। मैं सिर झुकाकर तुमको प्रणाम करता हूँ।

ज्ञानदा गुणदा देवि गुणाध्यक्षा गुणाकरी।
गन्धपुष्पधरा मातः शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे मात:! एकामात्र तुम्हीं ज्ञान की देने वाली हो एवं तुम ही एकमात्र गुण की खान हो। तुम्हीं गुणों की अध्यक्ष हो। तुम्हीं गुणों की आधार हो। तुम्हीं गन्धपुष्प द्वारा निरन्तर शोभित रहती हो। मैं सिर झुकाकर तुमको नमस्कार करता हूँ।

घनश्यामप्रिया देवि घोरसंसारतारिणी।
घोरपापहरा चैव शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे कमले! तुम्हीं घनश्याम की प्रियतमा हो। एकमात्र तुम्हीं घोरतम

संसार सागर से रक्षा कर सकती हो। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई भी भयंकर पापों से उद्धार करने में समर्थ नहीं है अतः मैं तुमको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

चतुर्व्वेदमयी चिन्त्या चित्तचैतन्यदायिनी।
चतुराननपूज्या च शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे देवी! तुम्हीं चतुर्वेदमयी हो। एकमात्र तुम्हीं योगियों का ध्यान हो। तुम्हारे प्रसाद से ही चित्त में चैतन्यता का संचार होता है। जगत्पति चतुरानन भी तुम्हारी पूजा करते हैं। अतएव हे जननी! मैं तुमको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

चैतन्यरूपिणी देवि चन्द्रकोटिसमप्रभा।
चन्द्रार्कनखरज्योतिर्लक्ष्मि देवि नमाम्यहम्॥

हे देवी! तुम्हीं चैतन्यरूपिणी हो। तुम्हारे देह की कान्ति करोड़ों चन्द्रमों के समान रमणीय है। तुम्हारे चरणों की दीप्ति चन्द्र सूर्य की कान्ति से भी अधिक देदीप्यमान है। मैं तुमको नमस्कार करता हूँ।

चपला चतुराध्यक्षी चरमे गतिदायिनी।
चराचरेश्वरी लक्ष्मि शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे देवी लक्ष्मी! तुम सदा एक स्थान में वास नहीं करती हो। इसीलिए तुम्हारा 'चपला' नाम हुआ है। अन्तकाल में एकमात्र तुम्हीं गति देती हो। तुम्हीं चराचर जीवों की अधीश्वरी हो। मैं तुमको सिर झुकाकर प्रंणाम करता हूँ।

छत्रचामरयुक्ता च छलचातुर्य्यनाशिनी।
छिद्रौघहारिणी मातः शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे जननी! तुम्हीं शोभायमान छत्र और चामर से परम शोभा पाती हो। छलचातुरी प्रभाव से नाश को प्राप्त होते हैं। तुम्हीं पाप समूह को नष्ट करती हो। अतः मैं सिर झुकाकर तुमको प्रणाम करता हूँ।

जगन्माता जगत्कर्त्री जगदाधाररूपिणी।
जयप्रदा जानकी च शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे जननी! तुम्हीं जगत् की जननी हो। तुम्हीं जगत् का एकमात्र आधार हो। तुम जयदात्री हो। तुम्हीं जानकी रूप से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई हो। मैं सिर झुकाकर तुमको नमस्कार करता हूँ।

जानकीशप्रिया त्वं हि जनकोत्सवदायिनी।
जीवात्मनां च त्वं मातः शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे जननी! तुम जानकी, रघुवर की सहधर्मिणी हो। तुम्हीं जनक को आनन्द देने वाली हो। तुम्हीं सर्वजीवों की आत्मस्वरूपा हो। मैं सिर झुकाकर तुमको प्रणाम करता हूँ।

झिञ्जीरवस्वना देवि झंझावातनिवारिणी।
झर्झरप्रियवाद्या च शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे देवी! तुम्हारे कण्ठ का स्वर झिंजीरव के समान मधुर है। तुम्हारे अनुग्रह से झंझा वर्षायुक्त वायु के हाथ से सहज में ही रक्षा लाभ होता है। तुम गोवर्द्धनादि पर्वतों में झर्झर वाद्य में अत्यन्त हो, मैं तुमको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

अर्थप्रदायिनी त्वं हि त्वञ्च ठकाररूपिणी।
ढक्कादिवाद्यप्रणया डम्फवाद्यविनोदिनी॥
डमरूप्रणया मातः शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे जननी! एकमात्र तुम्हीं धन प्रदान करती हो। तुम्हीं ठकाररूपिणी हो। डमरू और डम्फ वाद्य से तुमको अत्यन्त प्रसन्नता होती है। ढक्कादि वाद्य तुम्हें प्रीतिकर हैं। मैं सिर झुकाकर तुम्हारे चरण कमलों में प्रणाम करता हूँ।

तप्तकांचनवर्णाभा त्रैलोक्यलोकतारिणी।
त्रिलोकजननी लक्ष्मि शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे देवी लक्ष्मी! तुम्हारा वर्ण तपे हुए कंचन के समान उज्ज्वल है।

तुम त्रैलोक्यवासी जीवों की रक्षा करती हो। तुम्हीं त्रिलोक को उत्पन्न करने वाली हो। मैं सिर झुकाकर तुमको प्रणाम करता हूँ।

त्रैलोक्यसुंदरी त्वं हि तापत्रयनिवारिणी।
त्रिगुणधारिणी मातः शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे जननी! तुम त्रिभुवन में परम रूपवती हो। तुम्हीं तीनों तापों का नाश करती हो। तुम्हीं सत्त्व, रज और तमोगुण धारिणी हो। मैं तुमको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

त्रैलोक्यमंगला त्वं हि तीर्थमूलपदद्वया।
त्रिकालज्ञा त्राणकर्त्री शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे देवी! तुम्हीं तीनों लोकों का मंगल विधान करती हो। तुम्हारे चरण कमलों में सम्पूर्ण तीर्थ विराजमान रहते हैं। तुम भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों को जानती हो। तुम्हीं जीवों की रक्षा किया करती हो। मैं तुमको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

दुर्गतिनाशिनी त्वं हि दारिद्र्यापद्विनाशिनी।
द्वारकावासिनी मातः शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे जननी! तुम आपदा, दुर्गति और दरिद्रों की दरिद्रता, आपदा को दूर करती हो। तुम्हीं द्वारकापुरी में विराजमान रहती हो। मैं सिर झुकाकर तुमको प्रणाम करता हूँ।

देवतानां दुराराध्या दुःखशोकविनाशिनी।
दिव्याभरणभूषांणी शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे देवी! देवता भी बहुत तपस्यादि बहुत से कष्ट से तुमको प्राप्त करते हैं। तुम प्रसन्न होने पर सम्पूर्ण शोकों को नष्ट कर देती हो। तुम दिव्य आभूषणों से शोभायमान हो रही हो। मैं सिर झुकाकर तुमको प्रणाम करता हूँ।

दामोदरप्रिया त्वं हि दिव्ययोगप्रदर्शिनी।
दयामयी दयाध्यक्षी शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे जननी! तुम दामोदर की प्रिया हो। तुम्हारे प्रसाद से ही दिव्य योग प्राप्त किया जा सकता है। तुम्हीं दयामयी हो। तुम ही दया की अधिष्ठात्री देवी हो। तुमको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

ध्यानातीता धराध्यक्षा धनधान्यप्रदायिनी।
धर्म्मदा धैर्यदा मातः शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे माता! तुम ध्यान से भी अतीत हो। तुम्हीं पृथ्वी की अध्यक्ष हो। तुम्हीं भक्तों को धन धान्यादि प्रदान करती हो। तुम्हीं धर्म और धैर्य की शक्ति देती हो। मैं सिर झुकाकर तुमको प्रणाम करता हूँ।

नवगोरोचना गौरी नन्दनन्दनगेहिनी।
नवयौवनचार्वंगी शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे देवी! तुम नवीन गोरोचन के समान गौरवर्णा हो। तुम्हीं नन्दनन्दन की प्रियतमा हो। तुम्हीं नवयौवन के कारण कान्तिप्रदा हो। मैं तुमको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

नानारत्नादिभूषाढ्या नानारत्नप्रदायिनी।
नितम्बिनी नलिनाक्षी लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे देवी! तुम अनेक प्रकार के रत्नादि आभूषणों से विभूषित होकर परम शोभा को पाती हो। तुम्हीं प्रसन्न होने पर नाना रत्नादि प्रदान करती हो। तुम्हीं विशाल नितम्ब वाली हो। तुम्हारे नेत्र कमल के समान सुन्दर हैं। तुमको सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

निधुवनप्रेमानन्दा निराश्रयगतिप्रदा।
निर्व्विकारा नित्यरूपा लक्ष्मिदेवि नमोऽस्तु ते॥

हे लक्ष्मीदेवी! तुम विकाररहित और नित्यरूपिणी हो। निधुवन में विहार करने से तुमको प्रेमानन्द की प्राप्ति होती है। तुम्हीं निराश्रय को पार लगा देती हो। तुमको नमस्कार है।

पूर्णानन्दमयी त्वं हि पूर्णब्रह्मसनातनी।
परा शक्तिः परा भक्तिर्लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे देवी कमले! तुम पूर्णानन्दमयी हो। तुम्हीं पूर्ण ब्रह्मस्वरूपिणी हो। तुम्हीं परम शक्ति हो। तुम्हीं परम भक्तिस्वरूपा हो। तुमको नमस्कार करता हूँ।

पूर्णचन्द्रमुखी त्वं हि परानन्दप्रदायिनी।
परमार्थप्रदा लक्ष्मि शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे देवी! तुम्हारी देह पूर्णचन्द्रमा के समान शोभायमान है। तुम्हीं परमानन्द और परमार्थ का दान देती हो। मैं सिर झुकाकर तुमको प्रणाम करता हूँ।

पुण्डरीकाक्षिणी त्वं हि पुण्डरीकाक्षगेहिनी।
पद्मरागधरा त्वं हि शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

तुम्हारे नेत्र कमल के समान सुन्दर हैं। तुम्हीं पुण्डरीकाक्ष की गेहिनी हो। तुम्हीं पद्मरागमणि धारण करके परम शोभा को प्राप्त होती हो। मैं सिर झुकाकर तुमको प्रणाम करता हूँ।

पद्मा पद्मासना त्वं हि मद्मामालाविधारिणी।
प्रणवरूपिणी मातः शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे माता! तुम पद्मासन पर विराजमान रहती हो। इसी कारण तुम्हारा 'पद्मा' नाम प्रसिद्ध हुआ है। तुम्हारे गले में मनोहर पद्ममाला सुन्दरता से पड़ी रहती है। तुम्हीं ओंकार रूपिणी हो। मैं तुमको सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

फुल्लेन्दुवदना त्वं हि फणिवेणिविमोहिनी।
फणिशायिप्रिया मातः शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे माता! तुम्हारा मुख चन्द्रमा की किरणों के समान मनोहर है। तुम्हारे सिर की वेणी ने फणि के समान लम्बायमान होकर परम शोभा धारण कर रखी है। तुम्हीं क्षीरोदसागर में शेष शय्या पर शयन करने वाले हरि की गृहिणी हो। मैं सिर झुकाकर तुमको प्रणाम करता हूँ।

विश्वकर्त्री विश्वभर्त्री विश्वत्रात्री विश्वेश्वरी।
विश्वाराध्या विश्वबाह्या लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे लक्ष्मी देवी! तुम्हीं संसार की सृष्टि करने वाली हो। तुम्हीं विश्व का पालन करने वाली हो। तुम्हीं केवल सम्पूर्ण विश्व की ईश्वरी हो। तुम्हीं विश्ववासी जीवों की पूजनीया हो। तुम्हीं विश्व में सर्वत्र रहती हो, किन्तु तो भी तुम जगत में लिप्त नहीं हो। तुम्हीं विश्व के बाहर स्थित हो। तुम्हीं विश्व के भीतर स्थित हो। तुमको नमस्कार करता हूँ।

विष्णुप्रिया विष्णुशक्तिर्बीजमंत्रस्वरूपिणी।
वरदा वाक्यसिद्धा च शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

तुम्हीं विष्णु की प्रिया हो। तुम्हीं विष्णु की एकमात्र शक्ति हो। तुम्हीं बीजमंत्र स्वरूपिणी हो। तुम्हीं वर का दान देने वाली हो। तुम्हीं वाक्सिद्धियुक्त हो। मैं सिर झुकाकर तुमको प्रणाम करता हूँ।

वेणुवाद्यप्रिया त्वं हि वंशीवाद्यविनोदिनी।
विद्युद्गौरी महादेवि लक्ष्मी देवि नमोऽस्तु ते॥

हे महादेवी! हे लक्ष्मी देवी! तुम विद्युत् के समान गौरवर्णा हो। तुम्हें वेणु का वाद्य अति प्रिय है। तुम वंशी की धुन से विनोदनी हो जाती हो। तुमको सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

भुक्तिमुक्तिप्रदा त्वं हि भक्तनुग्रहकारिणी।
भवार्णवत्राणकर्त्री लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे लक्ष्मी देवी! तुम भुक्ति और मुक्ति को प्रदान करती हो। तुम भक्तों के प्रति अनुग्रह रखती हो। तुम्हीं आश्रितों को भवसागर से पार करती हो। तुमको नमस्कार करता हूँ।

भक्तप्रिया भागीरथी भक्तमंगलदायिनी।
भयदा भयदात्री च लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे लक्ष्मी देवी! तुम भक्तों के प्रति आन्तरिक स्नेह रखती हो। तुम्हीं भागीरथी गंगास्वरूपिणी हो। तुम भक्तों का कल्याण करती हो। तुम्हीं दुष्टों का नाश करती हो। तुम शरणागतों को अभय करती हो। तुमको नमस्कार करता हूँ।

मनोऽभीष्टप्रदा त्वं हि महामोहविनाशिनी।
मोक्षदा मानदात्री च लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे लक्ष्मी देवी! तुम कामना पूर्ण करती हो। तुम मोह का विनाश करती हो। तुम्हीं मोक्ष देती हो। तुम सन्मान देती हो। तुमको नमस्कार करता हूँ।

महाधन्या महामान्या माधवस्यात्ममोहिनी।
मोक्षदा मानदात्री च लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे लक्ष्मी देवी! तुम्हीं महाधन्या हो। तुम महा माननीय हो। तुमने ही माधव को मोहित किया हुआ है। जो बहुत बोलने वाले अर्थात चुगलखोर हैं। तुम उनका नाश करती हो। तुमको नमस्कार करता हूँ।

यौवनपूर्णसौन्दर्या योगमाया तथेश्वरी।
युग्मश्रीफलवृक्षा च लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे लक्ष्मी देवी! तुम पूर्ण यौवन को धारण करके सुन्दर लग रही हो। तुम्हीं योगमाया हो। तुम्हीं योग की ईश्वरी हो। तुम्हारे वक्ष पर दो नारियल के समान ऊँचे दो स्तन शोभा पा रहे हैं। तुमको नमस्कार करता हूँ।

युग्मांगदविभूषाढया युवतीनां शिरोमणिः।
यशोदासुतपत्नी च लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे लक्ष्मी देवी! तुम्हारे दोनों बाहुओं में दो बाजूबन्द विद्यमान हैं। तुम्हीं युवतियों की शिरोमणि हो। तुम्हीं यशोदानन्दन की पत्नी हो। तुमको नमस्कार करता हूँ।

रूपयौवनसम्पन्ना रत्नालंकारधारिणी।
राकेन्दुकोटिसौन्दर्य्या लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे लक्ष्मी देवी! तुम रूप एवं यौवन से सम्पन्न हो। तुम्हीं रत्न अलंकार से विभूषित हो। तुम्हारी कान्ति करोड़ चन्द्रमा से भी उज्ज्वल है। तुमको नमस्कार करता हूँ।

रमा रामा रामपत्नी राजराजेश्वरी तथा।
राज्यदा राज्यहन्त्री च लक्ष्मिदेवि नमोऽस्तु ते॥

हे लक्ष्मी देवी! तुम्हारा ही नाम 'रमा' और 'रामा' है। तुम्हीं राम की पत्नी हो। तुम्हीं राज राजेश्वरी हो। तुम्हीं राज्य प्रदान करती हो। तुम्हीं राज्य का नाश करती हो। तुमको नमस्कार करता हूँ।

लीलालावण्यसम्पन्ना लोकानुग्रहकारिणी।
ललना प्रीतिदात्री च लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे जननी! तुम्हीं लीला और लावण्य से सम्पन्न हो। तुम्हीं लोकों पर अनुग्रह करती हो। स्त्रीजन तुम्हारे द्वारा परम प्रीति को प्राप्त करती हैं। तुमको नमस्कार करता हूँ।

विद्याधरी तथा विद्या वसुदा त्वन्तु वन्दिता।
विन्ध्याचलवासिनी च लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे लक्ष्मी देवी! तुम्हीं विद्या हो। तुम्हीं विद्याधरी हो। तुम्हीं वसुदा हो। तुम्हीं वंदनीय हो। तुम्हीं विन्ध्यवासिनी रूप से विन्ध्याचल में निवास करती हो। तुमको नमस्कार करता हूँ।

शुभ काञ्चनगौरांगी शंखकंकणधारिणी।
शुभदा शीलसम्पन्ना लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे लक्ष्मी देवी! तुम शुभ कंचन के समान गौर वर्णा हो। तुमने अपने हाथ में शंख और कंकण धारण किये हैं। तुम शुभदायक हो। तुम अत्यन्त शीलवती हो, तुमको नमस्कार करता हूँ।

षट्चक्रभेदिनी त्वं हि षडैश्वर्य्यप्रदायिनी।
षोडसी वयसा त्वन्तु लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे लक्ष्मी देवी! तुम्हीं षड्चकभेदिनी हो। तुम्हीं छः प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करती हो। तुम्हीं सोलह वर्ष की अवस्था वाली नवयुवती हो। तुमको नमस्कार करता हूँ।

सदामन्दमयी त्वं हि सर्वसम्पत्तिदायिनी।
संसारतारिणी देवि शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे देवी! तुम सर्वदा आनन्दमयी हो। तुम्हीं सर्वसम्पत्ति देती हो।

तुम्हीं संसार से पार करती हो। मैं सिर झुकाकर तुमको प्रणाम करता हूँ।

सुकेशी सुखदा देवि सुंदरी सुमनोरमा।
सुरेश्वरी सिद्धिदात्री शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे देवी! तुम्हारे केश मनोहर हैं। तुम सुख देती हो। तुम सुन्दरी और मनमोहिनी हो। तुम्हीं देवताओं की ईश्वरी हो। तुम सिद्धि प्रदायिनी हो। मैं सिर झुकाकर तुमको प्रणाम करता हूँ।

सर्वसंकटहन्त्री त्वं सत्यसत्त्वगुणान्विता।
सीतापतिप्रिया देवि शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे देवी! तुम सम्पूर्ण संकट दूर करती हो। तुम सत्य-नारायण हो। तुम सत्त्वगुणशालिनी हो। तुम ही सीतापति रमाचन्द्र की प्रिय पत्नी हो। मैं सिर झुकाकर तुमको प्रणाम करता हूँ।

हेमांगिनी हास्यमुखी हरिचित्तविमोहिनी।
हरिपादप्रिया देवि शिरसा प्रणमाम्यहम्॥

हे देवी! तुम पिधले काँच के समान गौरवर्णा हो। तुम सर्वदा प्रसन्न रहती हो। तुभने हरि का चित्त मोहित किया हुआ है। हरि के चरणों में ही तुम्हारा अत्यन्त अनुराग है। मैं सिर झुकाकर तुमको प्रणाम करता हूँ।

क्षेमंकरी क्षमादात्री क्षौमवासोविधारिणी।
क्षीणमध्या च क्षेत्रांगी लक्ष्मि देवि नमोऽस्तु ते॥

हे लक्ष्मी देवी! तुम कल्याण करने वाली हो। तुम क्षमादात्री हो। क्षौमवस्त्र को धारण करती हो। तुम्हारी कमर ने पतली होने से परम शोभा दिखा रही है। तुम्हारे अंग में सम्पूर्ण तीर्थ और क्षेत्र विद्यमान रहते हैं। तुमको नमस्कार करता हूँ।

श्रीशंकर उवाच

अकारादि क्षकारान्तं लक्ष्मीदेव्याः स्तव शुभम्।
पठितव्यं प्रयत्नेन त्रिसन्ध्यञ्च दिने दिने॥

श्री महादेव जी बोले—हे पार्वती! तुम्हारे प्रश्नानुसार अकारादि से क्षकारान्त वर्ण वाला लक्ष्मी स्तोत्र वर्णन किया है। इस कल्याणकारक स्तोत्र का प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में प्रयास करके पाठ करना चाहिये।

पूजनीया प्रयत्नेन कमला करुणामयी।
वाञ्छाकल्पलता साक्षाद्भक्तिमुक्तिप्रदायिनी॥

इसे पूजना चाहिये क्योंकि यह कमला देवी करुणा से परिपूर्ण है। यह अभिलाभाएँ पूर्ण किया करती है। यही साक्षात् भक्ति एवं मुक्ति देने वाली है।

इदं स्तोत्र पठेद्यस्तु शृणुयात् श्रावयेदपि।
इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य सत्यं सत्यं हि पार्वति॥

जो पुरुष इस लक्ष्मी स्तोत्र को पढ़ते हैं या सुनते हैं या दूसरे मनुष्य को सुनाते हैं। हे पार्वती! उनके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं करना।

इदं स्तोत्रं महापुण्यं यः पठेद्भक्तिसंयुतः।
तञ्च दृष्ट्वा भवेन्मको वादी सत्यं न संशयः॥

हे गौरी! जो साधक भक्ति सहित इस पवित्र स्तोत्र का पाठ करते हैं, उनके दर्शन मात्र से ही वादी मूकता को प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं।

शृणुयाच्छ्रावयेद्यस्तु पठेद्वा पाठयेदपि।
राजानौ वशमायान्ति तं दृष्ट्वा गिरिनन्दिनि॥

हे गिरिनन्दिनि! जो इस स्तोत्र को सुनते हैं। जो दूसरों को सुनाते हैं। जो स्वयं पढ़ा करते हैं। जो दूसरों को पढ़ाते हैं। उनके दर्शनमात्र से ही राजा लोग वशीभूत होते हैं।

तं दृष्ट्वा दुष्टसंघाश्च पलायन्ते दिशो दश।
भूतप्रेतग्रहा यक्षा राक्षसा पन्नगादयः॥
विद्रवन्ति भयार्ता वै स्तोत्रस्यापि च कीर्त्तनात्॥

जो पुरुष इस लक्ष्मी स्तोत्र का कीर्तन करते हैं, उनके दर्शन मात्र

से ही दुष्टगण दशों दिशा में भाग जाते हैं। भूत, प्रेत, ग्रह, यक्ष, राक्षस, सर्प इत्यादि भी उससे डरकर अन्यत्र चले जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं करना।

सुराश्च ह्यसुराश्चैव गंधर्वकिन्नरादयः।
प्रणमन्ति सदा भक्त्या तं दृष्टवा पाठकं मुदा॥

जो व्यक्ति इस स्तोत्र का पाठ करते हैं, देवता, दानव, गन्धर्व, किन्नर उसको देखते ही आनन्द और भक्ति सहित प्रणाम करते हैं।

धनार्थी लभते चार्थं पुत्रार्थी च सुतं लभेत्।
राज्यार्थी लभते राज्यं स्तवराजस्य कीर्त्तनात्॥

इस अति उत्तम स्तव का कीर्तन करने से धनार्थी धन, पुत्रार्थी पुत्र और राज्यार्थी राज्य को प्राप्त किया करता है।

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्व्वंगनागमः।
महापापोपापापञ्च तरन्ति स्तवकीर्त्तनात्॥

ब्रह्म हत्या, सुरापान, चोरी, गुरु स्त्रीगमन, महापातक, उपपातक, उस स्तव के कीर्तन करने मात्र के प्रभाव से सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा जाते हैं।

गद्मपद्यमयी वाणी मुखात्तस्य प्रजायते।
अष्टसिद्धिमवाप्नोति लक्ष्मीस्तोत्रस्य कीर्तनात्॥

इस लक्ष्मी स्तोत्र के कीर्तन करने से आपने आप ही मुख से गद्य पद्यमयी वाणी प्रादुर्भूत हुआ करती है। इसका कीर्तन करने वाला आठ प्रकार की सिद्धि को प्राप्त किया करता है।

वन्ध्या चापि लभेत् पुत्रं गर्भिणी प्रसवेत्सुतम्।
पठनात्स्मरणात् सत्यं वच्मि ते गिरिनन्दिनी॥

हे पर्वतनन्दिनि! तुमसे सत्य ही कहता हूँ। इस स्तोत्र के पढ़ने वा स्मरण करने मात्र से ही वंध्या पुत्र प्राप्त करती है, और गर्भवती स्त्री को उत्तम पुत्र प्राप्त होता है।

भूर्ज्जपत्रे समालिख्य रोचनाकुंकुमेन तु।
भक्त्या संपूजयेद्यस्तु गन्धपुष्पाक्षतैस्तथा॥
धारयेदक्षिणे बाहौ पुरुषः सिद्धिकांक्षया।
योषिद्वामभुजे धृत्वा सर्व्वसौख्यमयी भवेत्॥

जो पुरुष लक्ष्मी की कामना करते हैं। वे भोजपत्र के ऊपर गोरोचन और कुंकुम द्वारा इस स्तव को लिखकर गन्धपुष्पादि से भक्ति के साथ पूजा अर्चना करके दाहिने बाहु में धारण करे। स्त्रियाँ भी बाईं भुजा में धारण करने से सर्व सुखों से सुखी हो सकती हैं।

विषं निर्विषतां याति अग्निर्याति च शीतताम्।
शत्रवो मित्रतां यान्ति स्तवस्यास्य प्रसादतः॥

इस स्तवराज के प्रसाद से विष में निर्विषता, अग्नि में शीतलता और शत्रुओं में मित्रता प्राप्त होती है।

बहुना किमिहोक्तेन स्तवस्यास्य प्रसादतः।
वैकुण्ठे च वसेन्नित्यं सत्यं वच्मि सुरेश्वरि॥

हे सुरेश्वरी! इसका महात्म्य और अधिक क्या वर्णन करूँ? अन्त समय नित्य दिवस वैकुण्ठ में वास होता है। इसमें सन्देह नहीं करना।

कमला (लक्ष्मी) कवच

लक्ष्मीर्मे चाग्रतः पातु कमला पातु पृष्ठतः।
नारायणी शीर्षदेशे सर्व्वांगे श्रीस्वरूपिणी॥

लक्ष्मी मेरे अग्र भाग की रक्षा करें। कमला मेरी पीठ की रक्षा करें। नारायणी मेरे सिर की और श्रीस्वरूपिणी देवी मेरे सर्वांग की रक्षा करें।

रामपत्नी प्रत्यंगे तु सदावतु रमेश्वरी।
विशालाक्षी योगमाया कौमारी चक्रिणी तथा॥
जयदात्री धनदात्री पाशाक्षमालिनी शुभा।
हरिप्रिया हरिरामा जयंकरी महोदरी॥
कृष्णपरायणा देवी श्रीकृष्णमनोमोहिनी।
जयंकरी महारौद्री सिद्धिदात्री शुभंकरी॥

सुखदा मोक्षदा देवी चित्रकूटनिवासिनी।
भयं हरेत्सदा पायाद् भवबन्धाद्विमोचयेत्॥*

जो रामपत्नी अर्थात रामेश्वरी हैं, वह विशाल नेत्र वाली योगमाया लक्ष्मी मेरे सम्पूर्ण अंगों की रक्षा करें। वही कौमारी है, वही चक्रधारिणी है, वही जय देने वाली है, वही धनदाता है, वही पाशअक्षमालिनी है, वही कल्याणी है, वही हरिप्रिया है, वही हरिरामा है, वही जय देने वाली है, वही महोदरी है, वही कृष्ण परायणा है, वही श्रीकृष्ण मोहिनी है, वही महारौद्री है, वही सिद्धि देने वाली है, वही शुभ करने वाली है, वही सुख देने वाली है, वही मोक्ष देने वाली है। वही चित्रकूटनिवासिनी है। वही अनपायिनी लक्ष्मी देवी मेरा भय दूर करें। सर्वदा मेरी रक्षा करें। मेरा भव बन्धन हटायें।

कवचन्तु महापुण्यं यः पठेत् भक्तिसंयुक्तः।
त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यम्वा मुच्यते सर्व्वसंकटात्॥

जो भक्तियुक्त होकर प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में या एक सन्ध्या में ही इस परम पवित्र लक्ष्मी कवच का पाठ करता है, वह सम्पूर्ण संकटों से छूट जाता है।

पठणं कवचस्यास्य पुत्रधनविवर्द्धनम्।
भीति विनाशनञ्चैव त्रिषु लोकेषु कीर्त्तितम्॥

इस कवच के पाठ करने से पुत्र और धनादि की वृद्धि होती है। साधक का भय दूर होता है। इसका माहात्म्य त्रिभुवन में प्रसिद्ध है।

भूर्ज्जपत्रे समालिख्य रोचनाकुंकुमेन तु।
धारणाद्गलदेशे च सर्वसिद्धिभविष्यति॥

भोज पत्र के ऊपर गोरोचन और कुंकुम से इसको लिखकर कण्ठ में धारण करने से सर्वकामना पूर्ण होती हैं।

अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम्।
मोक्षार्थी मोज्ञमाप्नोति कवचस्य प्रसादतः॥

---

* केवल इन आठ पंक्तियों का पाठ करने से भी अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। —यशपाल भारती

इस कवच के प्रसाद से अपुत्र को पुत्र लाभ होता है। धनार्थी को धन लाभ और मोक्षार्थी को मोक्ष प्राप्त होता है। इसमें सन्देह नहीं करना।

गर्भिणी लभते पुत्र वन्ध्या च गर्भिणी भवेत्।
धारयेद्यदि कण्ठे च अथवा वामबाहुके॥

यदि नारियाँ इसे कण्ठ अथवा वाम बाहु पर नियमपूर्वक धारण करें, तो गर्भवती उत्तम पुत्र को प्राप्त करती हैं और वन्ध्या स्त्री भी गर्भवती हो जाती है।

यः पठेन्नियतो भक्त्या स एव विष्णुवद्भवेत्।
मृत्युव्याधिभयं तस्य नास्ति किञ्चिन्महीतले॥

जो कोई नित्य भक्तिपूर्वक इस कवच का पाठ करता है, वह विष्णु की समानता को प्राप्त होता है। पृथ्वी में मृत्यु एवं व्याधि उस पर आक्र ण नहीं कर सकती।

पठेद्वा पाठयेद्वापि शृणुयाच्छ्रावयेदपि।
सर्व्वपापविमुक्तस्तु लभते परमां गतिम्॥

जो पुरुष इस कवच को पढ़ते हैं या पढ़ाते हैं या स्वयं सुनते हैं या दूसरों को सुनाते हैं, वह सम्पूर्ण पापों से छूट कर परम गति को प्राप्त होते हैं।

विपदि संकटे घोरे तथा च गहरे वने।
राजद्वारे च नौकायां तथा च रणमध्यतः।
पठनद्धारणादस्य जयमाप्नोति निश्चितम्॥

विपद, घोर संकट, गहन वन, राजद्वार, नौका मार्ग, रणमध्य में, इस कवच के पाठ अथवा धारण किए रखने से सर्वत्र जय प्राप्त होती है।

अपुत्रा च तथा वन्ध्या त्रिपक्षं शृणुयादपि।
सुपुत्रं लभते सा तु दीर्घायुष्कं यशस्विनम्॥

बांझ स्त्री तीन पक्ष पर्यन्त यह कवच सुने, तो दीर्घायु महायशस्वी पुत्र को जन्म दे सकती है। इसमें सन्देह नहीं करना।

श्रृणुयाद्यः शुद्धबुद्ध्या द्वौ मासौ विप्रवक्त्रतः।
सर्व्वान्कामानवाप्नोति सर्व्वबन्धाद्विमुच्यते॥

जो पुरुष शुद्ध मन से दो महीने तक ब्राह्मण के मुख से यह कवच सुनता है, उसकी सम्पूर्ण कामना सिद्ध होती है। वह सर्व प्रकार के भवबन्धनों से छूट जाता है।

मृतवत्सा जीववत्सा त्रिमासं श्रृणुयाद्यदि।
रोगी रोगाद्विमुच्येत पठनान्मासमध्यतः॥

जिस स्त्री के पुत्र उत्पन्न होकर जीवित नहीं रहते हों अर्थात मृतवत्सा हो वह तीन महीने पर्यन्त इस कवच को भक्ति सहित सुने तो जीववत्सा होती है। रोगी पुरुष इसका पाठ करे तो एक महीने में ही रोग का नाश हो जाता है।

लिखित्वा भूर्जपत्रे च ह्यथवा ताडपत्रके।
स्थापयेन्नियतं गेहे नाग्निचौरभयं क्वचित्॥

जो पुरुष भोजपत्र या ताड़पत्र पर इस कवच को लिखकर घर में स्थापित करता है, उसको अग्नि, चोर इत्यादि का भय नहीं रहता है?

श्रृणुयाद्धारयेद्वापि पठेद्वा पाठयेदपि।
यः पुमान्सततं तस्मिन्प्रसन्ना सर्व्व देवताः॥

जो पुरुष प्रतिदिन यह कवच सुनता है या पढ़ता है या दूसरे को पढ़ाता है या जो कोई इसको धारण करता है, उस पर देवता सदा सर्वदा सन्तुष्ट रहते हैं।

बहुना किमिहोक्तेन सर्व्वजीवेश्वरेश्वरी।
आद्या शक्तिः सदा लक्ष्मीर्भक्तानुग्रहकारिणी।
धारके पाठके चैव निश्चला निवसेद् ध्रुवम्॥

अधिक और क्या कहूँ? जो पुरुष इस कवच का पाठ करते हैं या इसे लिखकर धारण करते हैं, आद्या शक्ति कमला (लक्ष्मी) अटल होकर उसके गृह में स्थित होती है।

महाविद्या मन्त्र

हूँ श्रीं ह्रीं वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ऐं।

महाविद्या ध्यान

चतुर्भुजां महादेवीं नागयज्ञोपवीतिनीम्।
महाभीभां करालास्यां सिद्धविद्याधरैर्युताम्॥
मुण्डमालावलीकीर्णां मुक्तकेशीं स्मिताननाम्।
एवं ध्यायेन्महादेवीं सर्वकामार्थ सिद्धये॥

देवी चतुर्भुजा, सर्प का यज्ञोपवीत धारण करने वाली है ये महाभीमा है, करालवदना है, सिद्ध और विद्याधरों से वेष्टित है, ये मुण्डमाला से अलंकृत है। इनके केश खुले व लहरा रहे हैं और ये हास्यमुखी है। सर्वकामार्थ सिद्धि के लिये देवी का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये।

दश महाविद्या स्तोत्र

श्रीशिव उवाच

दुर्ल्लभं मारिणींमार्गं दुर्ल्लभं तारिणींपदम्।
मन्त्रार्थं मंत्रचैतन्यं दुर्ल्लभं शवसाधनम्॥
श्मशानसाधनं योनिसाधनं ब्रह्मसाधनम्।
क्रियासाधनं भक्तिसाधनं मुक्तिसाधनम्॥
तव प्रसादाद्देवेशि सर्व्वाः सिध्यन्ति सिद्धयः॥

शिव ने कहा—तारिणी का उपासना मार्ग अत्यन्त दुर्लभ है। उनके

पद की प्राप्ति भी अति कठिन है। इनके मन्त्रार्थ ज्ञान, मन्त्र चैतन्य, शव साधन, श्मशान साधन, योनि साधन, ब्रह्म साधन, क्रिया साधन, भक्ति साधन और मुक्ति साधन; यह सब भी दुर्लभ हैं। किन्तु हे देवेशि! तुम जिसके ऊपर प्रसन्न होती हो, उनको सब विषय में सिद्धि प्राप्त होती है।

नमस्ते चण्डिके चण्डि चण्डमुण्डविनाशिनी।
नमस्ते कालिके कालमहाभयविनाशिनी॥

हे चण्डिके! तुम प्रचण्डस्वरूपिणी हो। तुमने ही चण्डमुण्ड का विनाश किया है। तुम्हीं काल का नाश करने वाली हो। तुमको नमस्कार है।

शिवे रक्ष जगद्धात्रि प्रसीद हरवल्लभे।
प्रणमामि जगद्धात्रीं जगत्पालनकारिणीम्॥
जगत्क्षोभकरीं विद्यां जगत्सृष्टिविधायिनीम्।
करालां विकटां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम्॥
हरार्च्चितां हराराध्यां नमामि हरवल्लभाम्।
गौरीं गुरुप्रियां गौरवर्णालंकार भूषिताम्॥
हरिप्रियां महामायां नमामि ब्रह्मपूजिताम्।

हे शिवे जगद्धात्रि हरवल्लभे! मेरी संसार से रक्षा करो। तुम्हीं जगत् की माता हो और तुम्हीं अनन्त जगत की रक्षा करती हो। तुम्हीं जगत् का संहार करने वाली हो और तुम्हीं जगत् को उत्पन्न करने वाली हो। तुम्हारी मूर्ति महाभयंकर है। तुम मुण्डमाला से अलंकृत हो। तुम हर से सेवित हो। हर से पूजित हो और तुम ही हरिप्रिया हो। तुम्हारा वर्ण गौर है। तुम्हीं गुरुप्रिया हो और श्वेत आभूषणों से अलंकृत रहती हो। तुम्हीं विष्णु प्रिया हो। तुम ही महामाया हो। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी तुम्हारी पूजा करते हैं। तुमको नमस्कार है।

सिद्धां सिद्धेश्वरीं सिद्धविद्याधरगणैर्युताम्।
मंत्रसिद्धिप्रदां योनिसिद्धिदां लिंगशोभिताम्॥
प्रणमामि महामायां दुर्गा दुर्गतिनाशिनीम्॥

तुम्हीं सिद्ध और सिद्धेश्वरी हो। तुम्हीं सिद्ध एवं विद्याधरों से युक्त हो। तुम मंत्रसिद्धि-दायिनी हो। तुम योनिसिद्धि देने वाली हो। तुम ही लिंगशोभिता महामाया हो। दुर्गा और दुर्गति नाशिनी हो। तुमको बारम्बार नमस्कार है।

उग्रामुग्रमयीमुग्रतारामुग्रगणैर्युताम् ।
नीलां नीलघनश्यामां नमामि नीलसुंदरीम् ॥

तुम्हीं उग्रमूर्ति हो, उग्रगणों से युक्त हो, उग्रतारा हो, नीलमूर्ति हो, नीले मेघ के समान श्यामवर्णा हो और नील सुन्दरी हो। तुमको नमस्कर है।

श्यामांगी श्यामघटितांश्यामवर्णविभूषिताम् ।
प्रणमामि जगद्धात्रीं गौरीं सर्व्वार्थसाधिनीम् ॥

तुम्हीं श्याम अंग वाली हो एवं तुम श्याम वर्ण से सुशोभित जगद्धात्री हो, जब सब कार्य का साधन करने वाली हो। गौरी हो। तुमको नमस्कार है।

विश्वेश्वरीं महाघोरां विकटां घोरनादिनीम् ।
आद्यमाद्यगुरोराद्यमाद्यनाथप्रपूजिताम् ॥
श्रीदुर्गां धनदामन्नपूर्णां पद्मां सुरेश्वरीम् ।
प्रणमामि जगद्धात्रीं चन्द्रशेखरवल्लभाम् ॥

तुम्हीं विश्वेश्वरी हो, महाभीमाकार हो, विकट मूर्ति हो। तुम्हारा शब्द उच्चारण महाभयंकर है। तुम्हीं सबकी आद्या हो, आदि गुरु महेश्वर की भी आदि माता हो। आद्यनाथ महादेव सदा तुम्हारी पूजा करते रहते हैं। तुम्हीं धन देने वाली अन्नपूर्णा और पद्मास्वरूपिणी हो। तुम्हीं देवताओं की ईश्वरी हो, जगत् की माता हो, हरवल्लभा हो। तुमको नमस्कार है।

त्रिपुरासुंदरी बालमबलागणभूषिताम् ।
शिवदूतीं शिवाराध्यां शिवध्येयां सनातनीम् ॥
सुंदरीं तारिणीं सर्व्वशिवागणविभूषिताम् ।
नारायणी विष्णुपूज्यां ब्रह्माविष्णुहरप्रियाम् ॥

हे देवी! तुम्हीं त्रिपुरसुन्दरी हो। बाला हो। अबला गणों से मंडित हो। तुम शिव दूती हो, शिव आराध्या हो, शिव से ध्यान की हुई, सनातनी हो, सुन्दरी तारिणी हो, शिवा गणों से अलंकृत हो, नारायणी हो, विष्णु से पूजनीय हो। तुम ही केवल ब्रह्मा, विष्णु तथा हर की प्रिया हो।

सर्वसिद्धिप्रदां नित्यामनित्यगुणवर्जिताम्।
सगुणां निर्गुणां ध्येयामर्च्चितां सर्व्वसिद्धिदाम्॥
दिव्यां सिद्धि प्रदां विद्यां महाविद्यां महेश्वरीम्।
महेशभक्तां माहेशीं महाकालप्रपूजिताम्॥
प्रणमामि जगद्धात्रीं शुम्भासुरविमर्द्दिनीम्॥

तुम्हीं सब सिद्धियों की दायिनी हो, तुम नित्या हो, तुम अनित्य गुणों से रहित हो। तुम सगुणा, निर्गुणा हो, ध्यान के योग्य हो, पूजिता हो, सर्व सिद्धियाँ देने वाली हो, दिव्या हो, सिद्धिदाता हो, विद्या हो, महाविद्या हो, महेश्वरी हो, महेश की परम भक्ति वाली माहेशी हो, महाकाल से पूजित जगद्धात्री हो और शुम्भासुर की नाशिनी हो। तुमको नमस्कार है।

रक्तप्रियां रक्तवर्णां रक्तबीजविमर्द्दिनीम्।
भैरवीं भुवनां देवी लोलजिह्वां सुरेश्वरीम्॥
चतुर्भुजां दशभुजामष्टादशभुजां शुभाम्।
त्रिपुरेशी विश्वनाथप्रियां विश्वेश्वरीं शिवाम्॥
अट्टहासामट्टहासप्रियां धूम्रविनाशिनीम्।
कमलां छिन्नभालाञ्च मातंगीं सुरसुंदरीम्॥
षोडशीं विजयां भीमां धूम्राञ्च बगलामुखीम्।
सर्व्वसिद्धिप्रदां सर्व्वविद्यामंत्रविशोधिनीम्॥
प्रणमामि जगत्तारां साराञ्च मंत्रसिद्धये॥

तुम्हीं रक्त से प्रेम करने वाली रक्तवर्णा हो। रक्त बीज का विनाश करने वाली, भैरवी, भुवना देवी, चलायमान जीभ वाली, सुरेश्वरी हो। तुम चतुर्भुजा हो, कभी दश भुजा हो, कभी अठारह भुजा हो, त्रिपुरेशी हो,

विश्वनाथ की प्रिया हो, ब्रह्मांड की ईश्वरी हो, कल्याणमयी हो, अट्टहास से युक्त हो, ऊँचे हास्य से प्रीति करने वाली हो, धूम्रासुर की नाशिनी हो, कमला हो, छिन्नमस्ता हो, मातंगी हो, त्रिपुर सुन्दरी हो, षोडशी हो, विजया हो, भीमा हो, धूम्रा हो, बगलामुखी हो, सर्व सिद्धिदायिनी हो, सर्वविद्या और सब मन्त्रों की विशुद्धि करने वाली हो। तुम सारभूता और जगत्तारिणी हो। मैं मन्त्र सिद्धि के लिये तुमको नमस्कार करता हूँ।

इत्येवञ्च वरारोहे स्तोत्रं सिद्धिकरं परम्।
पठित्वा मोक्षमाप्नोति सत्यं वै गिरिनन्दिनि॥

हे वरारोहे। यह स्तव परम सिद्धि देने वाला है। इसका पाठ करने से सत्य ही मोक्ष प्राप्त होता है।

कुजवारे चतुर्दश्याममायां जीववासरे।
शुक्रे निशिगते स्तोत्रं पठित्वा मोक्षमाप्नुयात्।
त्रिपक्षे मंत्रसिद्धिः स्यात्स्तोत्रपाठाद्धि शंकरि॥

मंगलवार की चतुर्दशी तिथि में, बृहस्पतिवार की अमावस्या तिथि में और शुक्रवार निशा काल में यह स्तुति पढ़ने से मोक्ष प्राप्त होता है। हे शंकरि! तीन पक्ष तक इस स्तव के पढ़ने से मन्त्र सिद्धि होती है। इसमें सन्देह नही करना चाहिए।

चतुर्दश्यां निशाभागे शनिभौमदिने तथा।
निशामुखे पठेत्स्तोत्रं मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात्॥

चौदश की रात में तथा शनि और मंगलवार की संध्या के समय इस स्तव का पाठ करने से मन्त्र सिद्धि होती है।

केवलं स्तोत्रपाठाद्धि मंत्रसिद्धिरनुत्तमा।
जागर्ति सततं चण्डी स्तोत्रपाठाद्भुजंगिनी॥

जो पुरुष केवल इस स्तोत्र को पढ़ता है, वह अनुत्तमा सिद्धि को प्राप्त करता है। इस स्तव के फ़ल से चण्डिका कुलकुण्डलिनी नाड़ी का जागरण होता है।

महाविद्या कवच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वसिद्धिदम्।
आद्याया महाविद्यायाः सर्व्वाभीष्टफलप्रदम्॥

हे देवी! महाविद्या का कवच कहता हूँ—सुनो यह सब अभीष्टों का देने वाला है।

कवचस्य ऋषिर्देवि सदाशिव इतीरितः।
छन्दोऽनुष्टुब् देवता च महाविद्या प्रकीर्तिता॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां विनियोगश्च साधने॥

इस कवच के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता महाविद्या धर्म, अर्थ, काम मोक्ष रूप फल के साधन में इसका विनियोग है।

ऐंकारः पातु शीर्षे मां कामबीजं तथा हृदि।
रमाबीजं सदा पातु नाभौ गुह्ये च पादयोः॥

ऐं बीज मेरे मस्तक, क्लीं बीज मेरे हृदय एवं श्रीं बीज मेरी नाभि, गुह्य और चरण की रक्षा करें।

ललाटे सुंदरी पातु उग्रा मां कण्ठदेशतः।
भगमाला सर्व्वगात्रे लिंगे चैतन्यरूपिणी॥

सुन्दरी मेरे मस्तक की, उग्रा मेरे कंठ की, भगमाला सारे शरीर की और चैतन्य रूपिणी देवी मेरे लिंग स्थान की रक्षा करें।

पूर्वे मां पातु वाराही ब्रह्माणी दक्षिणे तथा।
उत्तरे वैष्णवी पातु चेन्द्राणी पश्चिमेऽवतु॥
माहेश्वरी च आग्नेय्यां नैर्ऋते कमला तथा।
वायव्यां पातु कौमारी चामुण्डा हीशकेऽवतु॥

वाराही पूर्व दिशा में, ब्रह्माणी दक्षिण में, वैष्णवी उत्तर में, इन्द्राणी पश्चिम में, माहेश्वरी अग्नि कोण में, कमला नैर्ऋत कोण में, कौमारी वायु कोण में और चामुण्डा ईशान दिशा में सर्वदा मेरी रक्षा करें।

इद कवचमज्ञात्वा महाविद्याञ्च यो जपेत्।
न फलं जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि॥

इस कवच के बिना जो साधक इस महाविद्या का मन्त्र जपता है वह सौ करोड़ कल्प में भी उसका फल प्राप्त नहीं कर पाता है।

षोडषी
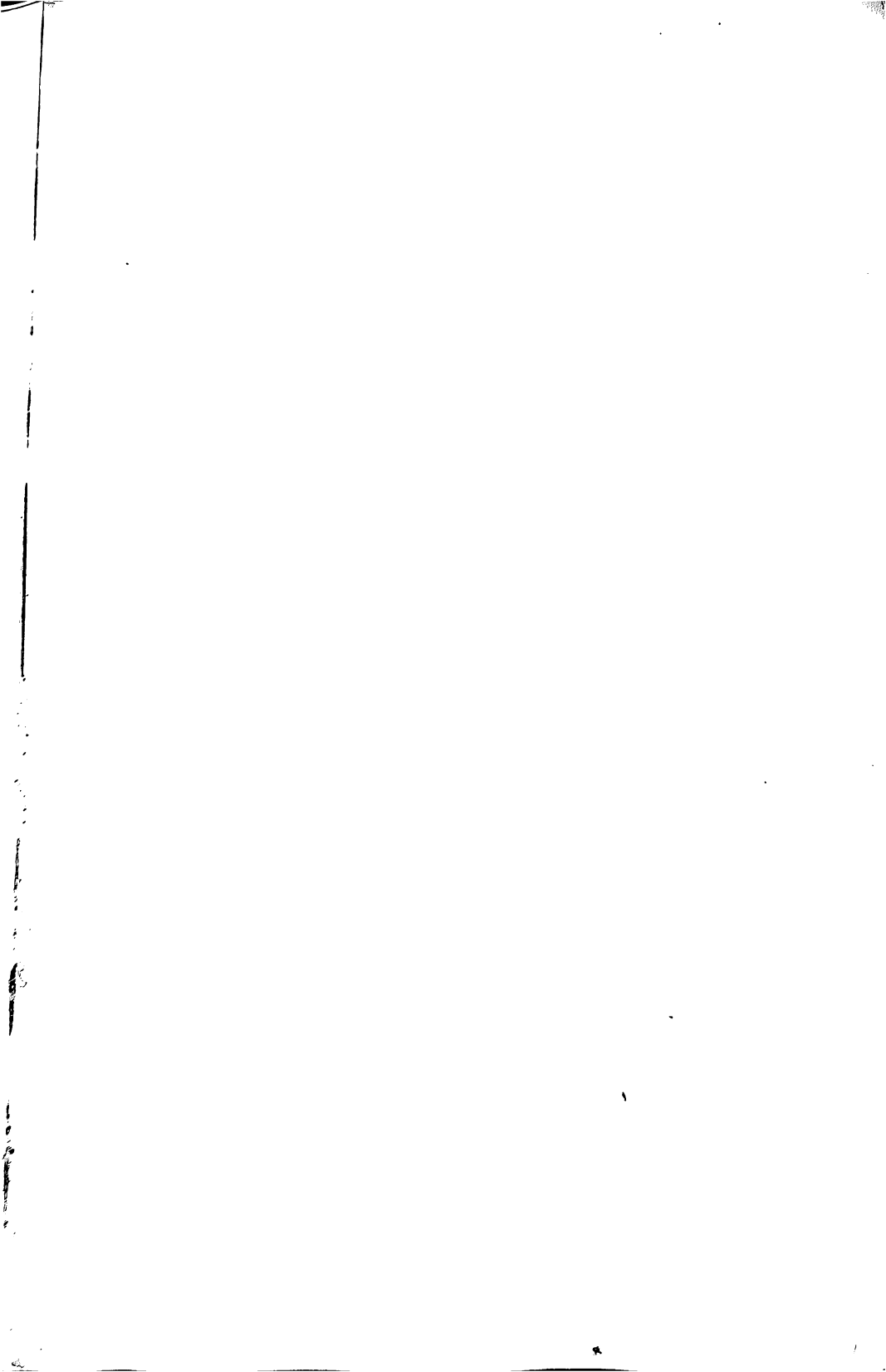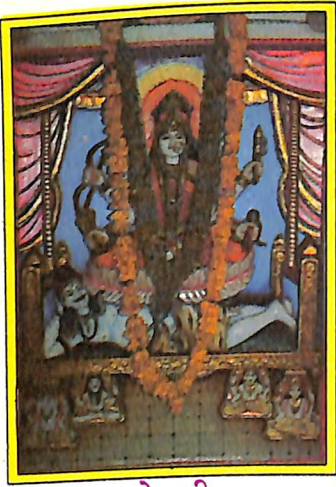
भुवनेश्वरी

छिन्नमस्ता

बगलामुखी

मातंगी

कमला